अध्याय 15

वृहत्तर भारत

प्राचीन भारतीय इतिहास का एक रोचक पक्ष भारत की सीमाओं से परे के देशों के जीवन और संस्कृति पर भारत का प्रभाव होना है। इन देशों में भारतीय दर्शन और विचार का प्रवेश हुआ, जिसके फलस्वरूप वहाँ भारतीय संस्कृति पल्लवित हुई और वह एक प्रकार का वृहत्तर भारत बना गया।

विश्व में अनेक देश हैं जहाँ हमारे देश की संस्कृति का प्रभाव उनके समाज के हर क्षेत्र में आज भी दिखता है। इन देशों के साथ हमारे संबंध हजारों साल पहले ही बन चुके थे। यह एक विचार का विषय है कि उन क्षेत्रों के साथ भारत के सांस्कृतिक, साहित्यिक, राजनैतिक एवं सामाजिक संबंध कैसे बने? हमने कभी भी विश्व के अन्य देशों पर अपने प्रभाव के लिए ताकत का प्रयोग नहीं किया। हमने अपनी सांस्कृतिक ताकत व अपने ज्ञान से दुनिया के देशों पर अपना प्रभाव जमाया।

भारतीय संस्कृति और सभ्यता का प्रचार

संस्कृति व ज्ञान–विज्ञान

भारत की सभ्यता व संस्कृति विश्व में उन्नत रही है। सम्राट हर्ष के काल तक भारत कला, साहित्य, शिक्षा और विज्ञान में सम्पूर्ण विश्व में आगे था, इसलिए प्राचीन काल में भारत विश्व गुरु कहलाता था। भारत में नालन्दा, तक्षशिला, विक्रमशिला और गया के विश्वविद्यालय शिक्षा के बड़े केन्द्र थे। भारत के अलावा चीन, जापान, तिब्बत, श्रीलंका, कोरिया, मंगोलिया आदि देशों के विद्यार्थी भी यहाँ ज्ञान प्राप्त करने आते थे। भारत की प्रसिद्धि सुनकर अनेक विदेशी यात्री भी इस काल में यहाँ आए। उनमें फाह्यान, ह्वेनसांग, और इत्सिंग नामक चीनी यात्री प्रमुख थे। ये सब विदेशों में भारतीय संस्कृति के संवाहक थे। इन्होंने यहाँ रहकर हमारे ज्ञान–विज्ञान का अध्ययन किया। अपने देश लौटते समय वे अपने साथ भारत की संस्कृति, साहित्य और ज्ञान अपने साथ ले गए। इन्होंने भारतीय ग्रंथों का अपनी भाषा में अनुवाद किया। इस प्रकार भारतीय संस्कृति का विदेशों में खूब प्रचार–प्रसार हो गया। प्राचीन समय में भारत में उद्योग एवं व्यापार अपने चरम सीमा पर थे। भारत में बनी वस्तुओं की विदेशों में भारी मांग थी। यहाँ का बहुत सा माल विदेशों में निर्यात किया जाता था। यह व्यापार जमीन व समुद्र दोनों ही रास्तों से होता था। भारत से मलमल, छींट, रेशम व जरी के वस्त्र; नील, गरम मसाले, लोह–इस्पात की वस्तुएँ आदि भारी मात्रा में निर्यात की जाती थी। यह माल जावा–सुमात्रा आदि दक्षिण–पूर्वी एशियाई देशों तथा पश्चिम व मध्य एशिया से आगे तक भेजा जाता था। इन क्षेत्रों में व्यापारियों का आना–जाना लगा रहता था। कुछ क्षेत्रों में भारतीय लोगों ने अपनी बस्तियाँ भी बसा ली। इस प्रकार वस्तुएँ ही नहीं अपितु भारतीय संस्कृति, ज्ञान–विज्ञान, साहित्य, धर्म और दर्शन भी वहाँ पहुँचा।

यह भी जानें–अग्नि पुराण के अनुसार जम्बूद्वीप से अलग एक 'द्वीपान्तर भारत' का अविर्भाव हुआ। यही भाव आधुनिक शब्द इण्डोनेशिया से अभिव्यक्त होता है। नेशिया का अर्थ द्वीप है, इसलिए इण्डोनेशिया का अर्थ 'भारतीय द्वीप' होता हैं। यह एक इस्लामिक देश है जहाँ भारतीय संस्कृति का प्रभाव दिखाई देता है।

www.rajteachers.com

बर्मा, स्याम, मलय प्रायद्वीप, कम्बोडिया, सुमात्रा, जावा, बोर्निया, बाली, अन्नाम, सुवर्णदीप, हिन्द–चीन आदि स्थानों पर भारतीय भाषा, साहित्य, धर्म, कला आदि के प्रभाव वहाँ के जन–जीवन में आज भी देखने को मिलते हैं। इन स्थानों पर मिलने वाले प्राचीन अवशेषों से वहाँ की संस्कृति और जन–जीवन पर भारत के गहरे प्रभाव और संबंधों का पता चलता है। साथ ही भारत की सभ्यता और संस्कृति के विस्तार का भी पता चलता है।

जब विश्व, मुख्यतः एशियाई देश भारत के सम्पर्क में आए तो उस समय उनमें सभ्यता के सभी स्तरों के लोग थे। कम्बोडिया के नंगे रहने वाले अर्ध जंगली लोगों से लेकर सभ्यता की आदिम अवस्था से आगे बढ़ जाने वाले जावा के निवासियों तक उसमें शामिल थे। इन सबने भारतीय सभ्यता की विशेषताओं को अनुभव किया और बहुत बड़ी सीमा तक उसे अपना लिया। भारत की भाषा, साहित्य, धर्म, कला और राजनीतिक तथा सामाजिक संस्थाओं ने इन लोगों पर सांस्कृतिक प्रभाव जमाया और वहाँ की

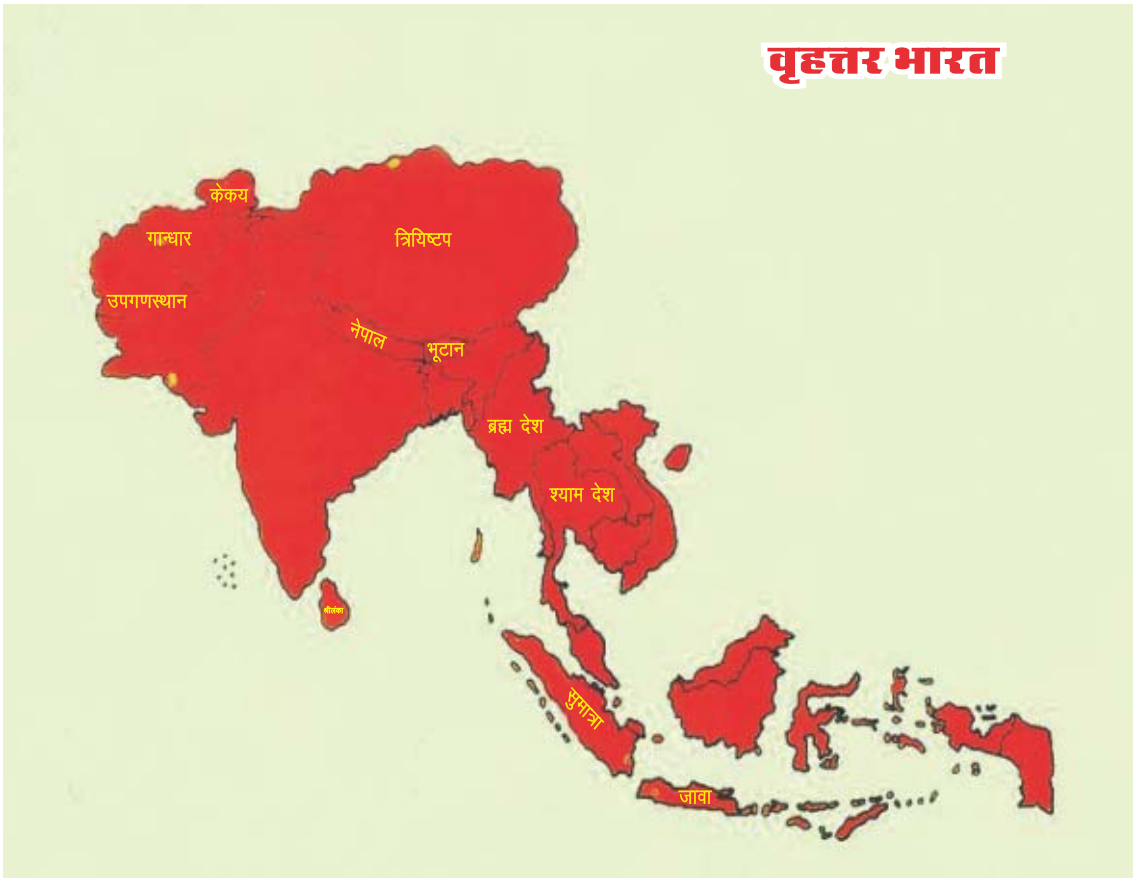

मानचित्र पैमाने पर आधारित नहीं हैं।

गतिविधि–

इस मानचित्र के वर्णित स्थानों के बारे में यह जानने का प्रयत्न करें कि आज भी हमारी संस्कृति का प्रभाव किन–किन क्षेत्रों में तथा कैसा रहा है?

www.rajteachers.com

स्थानीय संस्कृति के साथ मिलकर एक नई संस्कृति को जन्म दिया।

भाषा और साहित्य

संस्कृत में लिखे गये अभिलेख बर्मा, स्याम, मलय प्रायद्वीप, कम्बोडिया, अन्नाम, सुमात्रा, जावा और बोर्नियो में पाये गए हैं। इनमें से सबसे प्राचीन लेख ईसा की दूसरी–तीसरी शताब्दी के हैं। वहाँ संस्कृत का प्रयोग 1000 वर्षों से अधिक काल तक होता रहा। हिन्द–चीन के अधिकांश भागों में आज भी पालि भाषा जो संस्कृत से निकली हुई है, दैनिक प्रयोग में आती है।

चम्पा में 100 से अधिक संस्कृत अभिलेख मिले हैं। कम्बुज में मिले अभिलेखों की संख्या न केवल इनसे अधिक है वरन् वे साहित्य की दृष्टि से भी उच्च कोटि के हैं। वे सुन्दर काव्य शैली में लिखे गये हैं, जो किसी भी भारतीय के लिये गौरव की बात हो सकती है। यशोवर्मन के चार अभिलेख क्रमशः 50, 75, 93 और 108 छन्दों के हैं। राजेन्द्रवर्मन का एक लेख 218 छन्दों और दूसरा 268 छन्दों का हैं।

इन अभिलेखों के रचयिताओं ने संस्कृत साहित्य के प्रायः सभी छन्दों का प्रयोग किया हैं। उनमें संस्कृत व्याकरण, अलंकार और छन्द शास्त्र के विकसित सिद्धान्तों का पूर्ण ज्ञान व्यक्त होता है। इनमें रामायण, महाभारत, काव्य, पुराण और अन्य भारतीय साहित्य का घनिष्ठ परिचय और भारतीय दर्शन तथा आध्यात्मिक विचारों की गहरी पैठ प्रकट होती है। वे भारत के विभिन्न सम्प्रदायों के धार्मिक एवं आनुश्रूतिक धारणाओं से भी ओत–प्रोत हैं। यह सब इस सीमा तक है कि हम उसे ऐसे समाज के लिए आश्चर्यजनक ही कहेंगे जो भारत से हजारों मील दूर रहा हो। इन अभिलेखों में वेद, वेदान्त, स्मृति तथा ब्राह्मण, बौद्ध और जैन धार्मिक ग्रन्थों, रामायण, महाभारत, काव्य, पुराण, पाणिनि के व्याकरण और पतंजलि के महाभाष्य तथा मनु, वात्स्यायन, विशालाक्ष, सुश्रुत, प्रवरसेन, मयुर और गुणाठ्य की रचनाओं के अध्ययन का स्पष्ट उल्लेख पाया जाता है।

राजा और बड़े अधिकारी भी साहित्यिक कार्यों में नेतृत्व करते थे। चम्पा के तीन नरेशों के विद्वान् होने का उल्लेख मिलता है। उनमें से एक तो चारों वेदों का ज्ञाता था। कम्बुज नरेश यशोवर्मन के बारे में कहा जाता है कि वह शास्त्र और काव्यों का रसिक था।

जावा में लोगों ने न केवल संस्कृत साहित्य का अध्ययन किया वरन् उन्होंने स्वतः विस्तृत साहित्य का सृजन भी किया। महत्त्वपूर्ण रचनाओं में रामायण और महाभारत का जावी भाषा में गद्य अनुवाद उल्लेखनीय है। हमारे स्मृति और पुराणों के तरह के शास्त्रों की भी रचनाएँ हुई। उस काल की कुछ रचनाएँ इतिहास, भाषाशास्त्र और आयुर्वेद विषय पर भी पायी जाती है। विषय, गुण और मात्रा की दृष्टि से जावा के साहित्य में प्राचीन भारतीयों का यह योगदान एक उल्लेखनीय कार्य था। भारत के बाहर कहीं भी भारतीय साहित्य का इतना लाभपूर्ण न तो अध्ययन हुआ है और न ही उसका इतना महत्त्वपूर्ण परिणाम ही रहा।

यही बात बौद्ध पालि साहित्य के संबंध में बर्मा और सिंहल पर चरितार्थ होती है। इन दोनों देशों में बौद्ध धर्मग्रंथों में पालि भाषा अपनायी गयी, जिसने वहाँ नये साहित्य को जन्म दिया और आज तक वह निरन्तर चली आ रही है।

www.rajteachers.com

यह भी जानें –

भारत और चीन के सम्बन्धों का लम्बा इतिहास दूसरी शती ई. पूर्व से आरंभ होता है। भारत के विभिन्न भागों से चीन में जाकर अनेकानेक भारतीय विद्वानों ने संस्कृत ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। बौधिरूचि नामक विद्वान् 693 ई. में चालुक्य राजसभा में नियुक्त चीनी राजदूत के साथ नालन्दा से चीन गया। उसने 53 ग्रन्थों का अनुवाद किया।

तिब्बत प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति के प्रभाव में रहा है। नेपाल से शांति–रक्षित और उद्यान से पद्मसंभव नामक विद्वान् तिब्बत पहुँचे और उन्होंने वहाँ तिब्बती लामा धर्म की नींव रखी। उन्होंने वहाँ संस्कृत ग्रंथों का प्रचार किया, साथ ही उनका अनुवाद करने के लिए वहाँ विद्वान् तैयार किए।

धर्म

भारतीय संस्कृति से प्रभावित भाषा और साहित्य का प्रचार विश्व के जिन क्षेत्रों में देखा गया है, वहाँ भारत के धार्मिक विचारों तथा व्यवहारों ने लोगों के मन पर अपना पूर्ण अधिकार कर लिया था। बर्मा और स्याम में बौद्ध धर्म प्रधान था। जहाँ बौद्ध धर्म प्रधान था वहाँ सभी हिन्दू देवी–देवताओं की मूर्तियाँ भी पायी गई हैं। यद्यपि त्रिमूर्ति अर्थात् बह्मा, विष्णु और शिव की पूजा प्रचलित थी, परन्तु शिव की पूजा मुख्य रूप से होती थी। भारतीय धर्म एवं विचारों के परिचय के साथ यह न समझा जाऐ कि वहाँ के मूल विश्वास और विधान नष्ट हो गये। हाँ, कुछ तो मिटे पर कुछ अधिक विकसित होकर वहाँ के जन जीवन में घुल–मिल गये। कुछ अवस्थाओं में तो पुराने विश्वास और रीति रिवाजों ने नये पंथों को भी प्रभावित किया। इसका एक श्रेष्ठ उदाहरण जावा की बहुत लोकप्रिय मूर्ति 'भटार गुरु' है। इस मूर्ति की लोकप्रियता देखकर अनुमान लगाया जाता है कि शायद हिन्देशिया के कोई मूल देवता इसमें मिल गये हों। कुछ लोग इसे ऋषि अगस्त्य का प्रतीक मानते हैं, जिसकी लोकप्रियता जावा में मिले अनेक अभिलेखों से प्रकट होती है।

कम्बुज के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि अनेक विद्वान् लोग भारत से कम्बुज जाते थे और वहाँ सम्मान प्राप्त करते थे। वहाँ के कई विद्वान् लोग भारत आते थे। उदाहरण के लिए हम शिवसोम को ले सकते हैं जो वहाँ के राजा इन्द्रवर्मन के गुरु थे। इन्होने भगवत् शंकर, जो शंकराचार्य हो सकते हैं, के साथ शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया था।

दूसरी मुख्य विशेषता आश्रमों की संख्या है, जो सारे कम्बुज में फैली थी। राजा यशोवर्मन ने 100 आश्रम स्थापित किये थे। इन आश्रमों में रहने वाले लोगों एवं वहाँ के विद्यार्थियों का पूरा ध्यान रखा जाता था। बच्चों, वृद्धों, गरीबों व असहायों का भी पालन उन आश्रमों में किया जाता था। इन आश्रमों ने भारतीय सभ्यता और संस्कृति के विस्तार का काम किया।

www.rajteachers.com

यह भी जानें –

ऐतिहासिक युग में आते हुए हम 254 ई. पूर्व पर पहुँचते है, तब हम देखते हैं कि अशोक ने तीसरी बौद्ध संगीति (समागम) बुलाई तथा इसके बाद उसने यवन, सुवर्णद्वीप (हिन्देशिया) और लंका (ताम्रपर्णी अथवा सिंहल) आदि सुदूर देशों में दूतमंडल भेज कर और विषेषतः लंका में अपने पुत्र और पुत्री को भारतीय धर्म–दर्शन (बौद्ध धर्म) के स्थाई प्रचारक के रूप में नियुक्त करके उसने वृहत्तर भारत के निर्माण में एक बड़ा कदम उठाया।

समाज

वर्ण व्यवस्था जो भारतीय सभ्यता एवं समाज का मूल आधार था, वह भारतीय संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों में हुए प्रसार के कारण वहाँ भी स्थापित हुई। परन्तु जिस प्रकार बाद के समय में भारत में वर्ण व्यवस्था के मूल स्वरूप में परिवर्तन आया, वैसा वहाँ की संस्कृति में नहीं हुआ। बाली और कम्बोज के निवासियों में जो जाति व्यवस्था का स्वरूप आज दिखता है, उसे हम भारत की प्राचीन वर्ण व्यवस्था का उदाहरण समझ सकते हैं।

विवाह का आदर्श, विभिन्न प्रकार की रस्में, उनका स्वरूप और वैवाहिक संबंध लगभग भारत के समाज की तरह ही थे। सती–प्रथा भी प्रचलित थी। भारत के प्राचीन समाज की तरह ही वहाँ भी पर्दा–प्रथा नहीं थी। भारत की ही तरह स्त्री को अपना पति चुनने का अधिकार था।

जुआ, मुर्गों की लड़ाई, संगीत, नृत्य और नाटक लोगों के मनोरंजन के प्रमुख साधन थे। जावा में नाटक का लोकप्रिय रूप 'छाया नाट्य' है जो 'वयंग' कहलाता है। 'वयंग' के कथानक मुख्यतः रामायण और महाभारत से लिए गये हैं। जावा निवासियों द्वारा इस्लाम धर्म मानने के बावजूद आज भी ये खेल वहाँ उतने ही लोकप्रिय एवं प्रचलित है, जो भारतीय संस्कृति की व्यापकता का परिचायक है।

भारत की तरह ही वहाँ के समाज का मुख्य खाद्य चावल और गेहूँ ही था। वहाँ पान खाना भी प्रचलन में था। आभूषण व वस्त्रों का पहनने का प्रकार भी भारत की ही तरह था।

कला

जहाँ–जहाँ भारतीय संस्कृति का प्रभाव रहा, भारत की तरह वहाँ सभी जगह कला भी धर्म से प्रभावित रही है। यहाँ की कला का शुरूआती रूप पूर्णतः भारतीय ढ़ंग का है। वहाँ की प्राचीन कलाकृतियाँ, वहाँ जाकर बसने वाले भारतीय कलाकारों की ही कृतियाँ मानी जाती हैं। वहाँ की प्राचीन मूर्तियों और मंदिरों का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

जावा के मंदिर

जावा का सबसे महत्त्वपूर्ण वास्तुशिल्प वहाँ का 'बरोबोदूर' मंदिर है, जो 750 से 850 ई. के बीच शैलेन्द्रो के संरक्षण में बना था। इस भव्य भवन में एक के ऊपर एक नौ मंजिलें बनी हुई है तथा सबसे ऊपर एक घंटानुमा स्तूप है। इसका सौन्दर्य अकथनीय है। 'बरोबोदूर' की दूसरी उल्लेखनीय विशेषता इसके बरामदों में बनी मूर्तियों की पंक्तियाँ हैं। मूर्तियों की पंक्तियों की कुल ग्यारह श्रृंखलाएँ है और कुल संख्या लगभग 1500 है। 'बरोबोदूर' की बुद्ध की मूर्तियाँ और 'मेनदूत' की बोधिसत्व मूर्तियाँ की स्वतंत्र

www.rajteachers.com

मूर्तियाँ जावा की मूर्तिकला के सुन्दरतम नमूनों में मानी जा सकती है। चेहरे पर दैवी का आध्यात्मिक भाव इन मूर्तियों की प्रमुख विशेषता है। निःसन्देह भारत की गुप्तकालीन मूतिकला से ही इन मूर्तियों की रचना करने की प्रेरणा प्राप्त हुई होगी।

यद्यपि जावा का कोई अन्य मंदिर 'बरोबोदूर' के मंदिर जितना विशाल नहीं है और न ही उसके जैसी भव्यता पा सका, तथापि वहाँ की प्रम्बनन की घाटी में स्थित 'लारो–जंगरंग' के मन्दिर का स्थान द्वितीय माना जा सकता है। इसमें आठ मुख्य मंदिर हैं। उनमें शिव की मूर्ति प्रतिष्ठित हैं। उसके उत्तर के मंदिर में विष्णु की और दक्षिण के मन्दिर में ब्रह्मा की मूर्ति है। इसके बरामदे के भीतरी भाग में उत्कीर्ण मूर्तियों के 42 फलक हैं, जिनमें रामायण के आरम्भ से लेकर लंका पर आक्रमण तक के दृश्य अंकित हैं। हम कह सकते हैं कि 'बरोबोदूर' और 'लोरो–जंगरंग' जावा और भारतीय कला के शास्त्रीय और रोमांचक स्वरूपों को व्यक्त करते हैं।

कम्बुज के मंदिर

कम्बुज में 'अंगकोर' नामक स्थान के आरम्भिक वास्तुशिल्पों में कुछ मंदिर हैं, जिनकी भारतीय मंदिरों से बहुत कुछ साम्यता है। मंदिर के मध्य और किनारे के शिखर उत्तर भारतीय शैली के हैं। इस ढ़ंग का सर्वोत्तम और पूर्ण नमूना अंगकोर वाट में है। शिखरों को चारों दिशाओं की ओर मुँह किये मुण्डों द्वारा ढ़ककर एक नवीनता उत्पन्न की गयी है। मन्दिरों और नगरों के चारों ओर गहरी खाई, उसके ऊपर पुलनुमा रास्ता और रास्ते के दोनों ओर साँप के शरीर को खींचते हुए दैत्यों की शक्लें बनी हुई है, जो पुल के जंगले का काम करती हैं। संसार की वास्तुकला में यह निश्चय ही अनोखी और मौलिक वस्तुएँ हैं।

अंगकोर वाट का विष्णु मन्दिर

इन भवनों की विशालता का अनुमान इनकी विशाल लम्बाई व चौड़ाई से लगा सकते हैं। मंदिर की चारदीवारी के बाहर 650 फीट चौड़ी खाई है एवं 36 फीट चौड़ा पत्थर का रास्ता है। खाई मन्दिर के चारों ओर है, जिसकी लम्बाई लगभग 2 मील है। पश्चिम फाटक से पहले बरामदे तक की सड़क 1560 फीट लम्बी और 7 फीट ऊँची है। अन्तिम मंजिल का केन्द्रीय शीर्ष जमीन से 210 फीट की ऊँचाई पर है।

आनन्द मन्दिर

बर्मा में सर्वोत्तम मन्दिर पेगन का 'आनन्द' मन्दिर है। यह 564 वर्गफीट के चौकोर आँगन के बीच

www.rajteachers.com

में स्थित है। मुख्य मंदिर ईंटों का बना हुआ और वर्गाकार है। भव्य अनुपात और व्यवस्थित नियोजन के साथ ही 'आनन्द' मन्दिर का सौन्दर्य यहाँ पर उत्कीर्ण पत्थर की असंख्य मूर्तियों और दीवार पर लगे मिट्टी के चमकीले फलकों से बढ़ गया है। पत्थर की उत्कीर्ण मूर्तियों की संख्या 80 है और उनमें बुद्ध के जीवन की मुख्य घटनाएँ अंकित हैं। यह मन्दिर भारतीय शैली में ही विकसित हुआ है। उस ढ़ंग के मन्दिर बंगाल में पाये जाते हैं और सम्भवतः उन्ही से 'आनन्द' मन्दिर के नियोजन की प्रेरणा मिली होगी। इस मन्दिर के संदर्भ में ड्यूरोसाईल ने विशेष अध्ययन किया है। उनका मत है–

"जिन वास्तुकारों ने 'आनन्द' का नियोजन और निर्माण किया, वे निःसंदेह भारतीय थे। शिखर से लेकर कुर्सी तक प्रत्येक वास्तु तथा बरामदों में पायी जाने वाली अनेक प्रस्तर मूर्तियाँ तथा कुर्सियों और गलियारों में लगे मिट्टी के फलकों में भारतीय कला–कौशल और प्रतिभा की अमिट छाप दिखाई पड़ती है। इस दृष्टि से हम यह मान सकते हैं कि आनन्द का मन्दिर बर्मा की राजधानी में बना होने पर भी एक भारतीय मन्दिर ही है।"

निश्चित रूप से ऊपर वर्णित विभिन्न बिन्दुओं को पढ़ने के बाद हमने जाना कि भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं का विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में गहरा प्रभाव रहा है तथा वह प्रभाव वहाँ के सामाजिक जीवन पर आज भी दृष्टिगोचर हो रहा है। जिन देशों की ऊपर चर्चा की गई हैं, उनके अतिरिक्त भी अनेक क्षेत्रों पर हमारी संस्कृति का गहरा प्रभाव पड़ा। उदाहरण के लिए सुरीनाम, ईरान एवं कई अफ्रीका के देशों पर भी हमारी संस्कृति का गहरा प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

गतिविधि–

भारतीय संस्कृति के विभिन्न देशों पर पड़े प्रभाव को जानें एवं उसके उदाहरण अपनी नोटबुक में लिखें।

शब्दावली

हिन्देशिया	–	जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, बाली आदि द्वीप समूह
हिन्द–चीन	–	पूर्वी एशिया के वियतनाम कम्बोडिया आदि राष्ट्र
कम्बुज	–	कम्बोडिया
स्याम	–	थाईलैण्ड
चम्पा	–	अन्नाम्
बर्मा	–	म्यांमार
उत्कीर्ण करना	–	खोद कर लिखना

www.rajteachers.com

अभ्यास प्रश्न

प्रश्न एक व दो के सही उत्तर कोष्ठक में लिखिए –

1. चम्पा में कितने संस्कृत अभिलेख मिले है ?
   (अ) 50 से अधिक (ब) 70 से अधिक
   (स) 150 से अधिक (द) 100 से अधिक ( )
2. कम्बुज के कौनसे नरेश ने कुल 326 छन्दों के चार अभिलेखों की रचना की?
   (अ) जयवर्मन (ब) यशोवर्मन
   (स) राजवर्मन (द) बहुवर्मन ( )
3. जावा की सबसे लोकप्रिय मूर्ति का क्या नाम है ?
4. भारतीय वर्ण व्यवस्था में वर्णित चार वर्णों के नाम लिखें।
5. वयंग क्या है ? स्पष्ट करें।
6. 'बरोबोदूर' व लोरो–जंगरंग' पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखो ।
7. अंगकोर वाट के मन्दिर पर टिप्पणी लिखो।
8. भाषा साहित्य के क्षेत्र में भारतीय संस्कृति के प्रभाव का वर्णन करो।
9. 'समाज एवं धर्म' के क्षेत्र में भारतीय संस्कृति के प्रभाव का वर्णन करो।
10. बर्मा के 'आनन्द 'मन्दिर का वर्णन करते हुए ड्यूरोसाईल के कथन का विश्लेषण करें।

गतिविधि–

1. विश्व के मानचित्र में उन स्थानों को चिन्हित करें, जहाँ भारतीय संस्कृति का प्रभाव रहा हैं।
2. वृहत्तर भारत की सीमाओं को मानचित्र में प्रदर्शित करें।

www.rajteachers.com

अध्याय 16

हर्षकालीन व बाद का भारत

गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद भारत की राजनीतिक एकता ध्वस्त हो गई। यहाँ कई छोटे–छोटे राज्य बन गए। थानेश्वर में ऐसे ही एक नये राजवंश की स्थापना प्रभाकर वर्धन ने की। उसके दो पुत्र राज्यवर्धन और हर्षवर्धन तथा एक पुत्री राजश्री थी। अपने बड़े भाई की मृत्यु के बाद 606 ई. में हर्षवर्धन थानेश्वर का शासक बना। उसने कन्नौज को अपनी राजधानी बनाई और कई वर्षों तक निरंतर युद्ध करके संपूर्ण उत्तरी भारत पर अपना अधिकार कर लिया।

हर्ष का प्रभाव क्षेत्र :– हर्ष ने राज्य संभालने के साथ ही अपना राज्य एवं अपना प्रभाव क्षेत्र बढ़ाने के लिए कई सैनिक अभियान चलाए। हर्ष एक वीर योद्धा और विजेता था। उसके प्रमुख अभियानों में बंगाल, पंजाब, चालुक्य और वल्लभी से हुए युद्ध शामिल हैं। वह सिन्धु, नेपाल, उड़ीसा तक अपने अभियानों से अपना प्रभाव डालने में सफल रहा।

हर्ष की धार्मिक नीति और कन्नौज का धर्म सम्मलेनः– हर्ष प्रारम्भ में सूर्य और शिव का उपासक था, बाद में बौद्ध बन गया, किन्तु सभी धर्मों के प्रति उसकी नीति उदार थी। उसके राज्य में शैव, वैष्णव, जैन और बौद्ध धर्म स्वतन्त्रता पूर्वक प्रचलित थे। उसने राज्य के उच्च पदों पर गैर बौद्धों को नियुक्त किया। दान देने अथवा किसी कार्य में वह धार्मिक भेद नहीं करता था। उसने कन्नौज में एक विशाल धर्म सम्मेलन का आयोजन किया। चीनी यात्री ह्वेंनसांग को इसका अध्यक्ष बनाया। यह सम्मेलन 23 दिन तक चला। अनेक बौद्ध भिक्षु , चीनी यात्री, राजा और विद्वानों ने इसमें भाग लिया था।

प्रयाग सभा :– हर्ष प्रत्येक पाँच वर्ष के अंतराल में प्रयाग में एक सभा का आयोजन करता था। 643 ई. में छठी सभा हुई थी। हर्ष अपने पाँच वर्ष की एकत्रित सम्पत्ति को बाँट देता था। यहाँ तक कि स्वयं के धारण किये हुए वस्त्र तक दान में दे देता था। स्वयं के पहिनने के लिए बहिन से माँग कर बदन ढकता था। इस सभा को 'मोक्ष परिषद्' भी कहा जाता था।

हर्षकालीन सिक्के और मुहरें :– हर्षकालीन सोने के सिक्के मिले हैं,उन पर मुद्रा लेख हर्षदेव हैं, और उस पर एक घुड़सवार का चित्र है। अभिलेखों तथा बाणभट्ट के 'हर्ष चरित' में हर्ष को 'हर्षदेव' कहा गया है। हर्ष की अन्य मुहरें भी प्राप्त हुई हैं। सोनीपत मोहर के शीर्ष पर बैल की आकृति है। नालन्दा मुहर में एक अभिलेख है, जिसमें हर्ष को महाराजाधिराज कहा गया है।

लेखक तथा विद्वानों का आश्रयदाताः– हर्ष केवल विजेता और प्रशासक ही नहीं बल्कि विद्वान् भी था। हर्ष की काव्यात्मक कुशलता, मौलिकता, और विस्तृत ज्ञान को बाणभट्ट ने स्वीकार किया है। हर्ष को 'रत्नावली' 'प्रियदर्शिका' और 'नागानन्द' की रचना का श्रेय भी दिया जाता है। जयदेव ने अपनी कृति 'गीत गोविन्दम्' में कहा है कि कालिदास और भास की भाँति हर्ष भी एक महाकवि था। हर्ष के दरबार में कई विद्वान भी थे। बाणभटट् उनमें प्रमुख था और उसने 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' की रचना की। विद्वान हरिदत्त को भी हर्ष ने संरक्षण प्रदान किया।

हर्ष का प्रशासन :– सम्राट हर्ष स्वयं प्रशासन की धुरी था। उसका विचार था कि प्रशासकीय

www.rajteachers.com

कुशलता के लिये शासक को निरंतर सचेत रहना चाहिए। उसने दिन को तीन भागो में बाँट लिया था, जिनमें से एक भाग राज्य कार्य के लिए निश्चित था। वह प्रजा को देखने स्वयं नगरों और ग्रामों में यात्रा करता था।

यह ठीक हैं कि सिद्धान्त रुप में हर्ष का प्रशासन निरंकुश था। किन्तु लोगों को अपने अपने क्षेत्र में बहुत सा स्वशासन प्राप्त था। अधिकांश कार्य ग्रामीण समुदायों के हाथ में था। केन्द्रीय सरकार और ग्राम सभाओं में पर्याप्त सहयोग था। माना जाता हैं कि हर्ष का प्रशासन निरंकुश तथा गणतन्त्रीय तत्त्वों का मिश्रण था।

हर्ष का साम्राज्य प्रान्तों, भुक्तियों (डिविजन) और विषयों (जिलों) में विभक्त था। सबसे छोटी इकाई ग्राम थी। प्रशासन चलाने के लिए तीन प्रकार के करों का उल्लेख मिलता है– ''भाग'' भूमि कर था, ''हिरण्य'' नकद कर था, ''बलि'' अतिरिक्त कर था।

हर्ष के समय दण्ड विधान ज्यादा कठोर नहीं थे। दण्ड शारीरिक नहीं दिये जाते थे। अभियुक्त से अपराध स्वीकार कराने के लिए उसे यन्त्रणा नहीं दी जाती थी। परीक्षण द्वारा अपराध की जाँच करने का ढंग भी प्रचलित था।

हर्ष का मूल्यांकन :– हर्ष महान् विजेता था। इसका प्रमाण उस विशाल क्षेत्र से मिलता हैं, जिसे उसने अपने अधिकार में लिया। वह स्वयं विद्वान था और विद्वानों को संरक्षण भी देता था। हर्ष आदर्श शासक था। वह बहुत परिश्रमी था और सत्कार्यों में नींद और भोजन भूल जाता था। हर्ष ने अपना सारा समय अपनी प्रजा की हित वृद्धि में लगाया। यह कार्य करने के लिये दिन उसके लिए बहुत छोटा पड़ जाता था। उदारता और दान में हर्ष का कोई सानी न था। दानशीलता के लिए हर्ष विख्यात था। हर्ष ने नालन्दा विश्वविद्यालय के लिए 100 से अधिक गाँव दान में दिये थे। नालन्दा उस समय विश्व का प्रमुख विश्वविद्यालय बन चुका था।

नालन्दा विश्वविद्यालय :– उत्तर कालीन गुप्त सम्राटों में से एक ने पाँचवी शती में इसकी स्थापना की। भारत तथा सुदूर पार के भारतीय उपनिवेशों के धनी व्यक्तियों ने इसके लिए धन की व्यवस्था की। कालान्तर में यह अन्तर्राष्ट्रीय ज्ञान का मन्दिर बन गया।

नालन्दा विश्वविद्यालय में कम से कम आठ कॉलेज थे, जिन्हें आठ विद्यानुरागियों ने बनवाया था। नालन्दा विश्वविद्यालय में केवल भव्य भवन नहीं थे, बल्कि विद्यार्थियों को अध्ययन के लिए सभी प्रकार की सुविधाएँ भी दी जाती थी। उसमें तीन बड़े पुस्तकालय थे, जिन्हें क्रमशः रत्नसागर, रत्नादाही और रत्नरंजक कहा जाता था। वहाँ 10,000 से भी अधिक विद्यार्थी पढ़ते थे और लगभग 1500 अध्यापक अध्यापन कराते थे। वे कोरिया, मंगोलिया, जापान, चीन, तिब्बत, श्रीलंका, बृहत्तर भारत और भारत के विभिन्न भागों से छात्र यहाँ पढ़ने आते थे तथा बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए यहाँ से विभिन्न भागों में लोग जाते भी थे। नालन्दा विश्वविद्यालय में अध्ययन के प्रमुख विषय वेद, तर्कविद्या, व्याकरण, चिकित्सा, विज्ञान, गणित, ज्योतिष, दर्शन, सांख्य, योग, न्याय आदि एवं बौद्ध धर्म की विभिन्न शाखाओं को पढ़ाया जाता था। हर्षवर्धन ने इस विश्वविद्यालय को प्रश्रय दिया था।

गतिविधि– भारत के अन्य प्राचीन विश्वविद्यालयों के बारे मे जानकारी प्राप्त करें।

www.rajteachers.com

सम्राट हर्ष की मृत्यु के बाद भारत में पुनः कई छोटे–छोटे राज्य स्थापित हो गये थे। उत्तर और दक्षिण के इन राज्यों ने अपनी स्वंतत्र सत्ता स्थापित कर ली थी। इन स्वतंत्र राजवंशों ने आठवीं से बारहवीं शताब्दी तक राज्य किया। अपने राज्य विस्तार के लए यद्यपि वे आपस में लड़ते रहे, परन्तु इन्होंने किसी विदेशी शासक को सिन्धु नदी के इस ओर नहीं बढने दिया।

दक्षिण भारत के प्रमुख राजवंश

आठवीं से बारहवीं शताब्दी तक जिन प्रमुख राजवंशों ने दक्षिणी भारत में शासन किया, उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं–

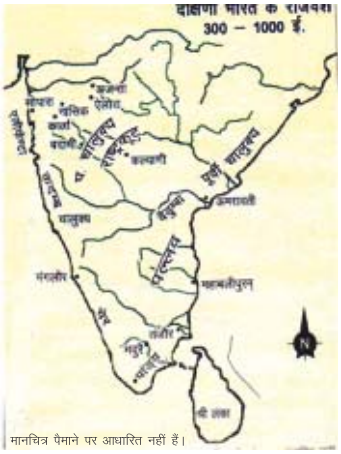

1. **राष्ट्रकूट वंश :–** दक्षिण के राज्यों मे राष्ट्रकूट राज्य सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण था। राष्ट्रकूटों ने कन्नौज और उसके आसपास के प्रदेशों पर अपनी सत्ता स्थापित करने के लिए बार–बार प्रयास किये। इन्होंने नर्मदा नदी के दक्षिण में वर्तमान महाराष्ट्र प्रदेश में अपना राज्य स्थापित किया। प्रारम्भ में वे चालुक्यों के अधीन थे। बाद में राष्ट्रकूट दंतिदुर्ग ने चालुक्यों को हराकर 753 ई. में. अपने राज्य का विस्तार किया। इस वंश के पराक्रमी शासक कृष्ण तृतीय, ध्रुव, गोविन्द, अमोघवर्ष आदि थे।
2. **चालुक्य वंश :–** इस वंश का राज्य नर्मदा नदी के दक्षिण से कृष्णा नदी तक फैला हुआ था। राष्ट्रकूटों और पल्लवों से चालुक्यों का निरन्तर युद्ध होता रहता था। इस वंश का पराक्रमी शासक पुलकेशियन द्वितीय था, जिसने सम्राट हर्षवर्धन को भी पराजित किया था। विक्रमादित्य द्वितीय भी इस वंश का शक्तिशाली शासक था। एक बार 753 ई में राष्ट्रकूटों से पराजित होकर चालुक्यों ने 973 ई. में पुनः अपना राज्य स्थापित किया और मध्य हैदराबाद में कल्याणी को अपनी राजधानी बनायी।
3. **पल्लव वंश :–** यह दक्षिण भारत का प्राचीन राजवंश था। इस वंश का शासक महेन्द्रवर्मन था जो चालुक्य नरेश पुलकेशिन द्वितीय से पराजित हो गया था। बाद में उसके पुत्र नरसिंह वर्मन ने 642 ई. में चालुक्यों की राजधानी पर अधिकार कर लिया। पल्लवों का चालुक्यों से निरन्तर संघर्ष चलता रहता था। नवीं शताब्दी में राष्ट्रकूट और चोल शासकों ने भी पल्लवों पर आक्रमण किया। 885 ई.में चोल शासक आदित्य प्रथम ने पल्लवों को हराकर उनकी राजधानी काँची पर अधिकार कर लिया और इस प्रकार पल्लव राज्य का अंत हो गया।
4. **चोल वंश :–** चोल राज्य कृष्णा और कावेरी नदियों के बीच समुद्रतट पर स्थित था। इस राज्य का विस्तार 864 ई में चोल शासक विजयालय द्वारा किया गया। उसने पल्लवों की अधीनता से चोल राज्य को मुक्त किया। बाद में उसके पुत्र आदित्य ने पल्लव नरेश अपराजित वर्मा को परास्त कर काँची पर अधिकार कर लिया।

इस वंश का सबसे प्रतापी शासक राजेन्द्र प्रथम था जो 1012 ई. में गद्दी पर बैठा। उसने सम्पूर्ण

www.rajteachers.com

दक्षिण में अपना राज्य स्थापित कर लिया और उत्तर भारत की ओर आक्रमण किये। वह कलिंग व बंगाल को जीतता हुआ गंगातट तक पहुंच गया और 'गंगे कौण्ड' की उपाधि धारण की। उसने जल सेना बनाकर बंगाल की खाड़ी और बर्मा पर भी विजय प्राप्त की। राजेन्द्र प्रथम एवं अन्य चोल शासकों ने भारतीय सभ्यता और संस्कृति के संरक्षण में विशेष योगदान दिया है।

गतिविधि–

दक्षिण भारत के कुछ और राजवंशों की जानकारी प्राप्त करें एवं वह किन क्षेत्रों में फैला था जानकारी करें।

- **शासन व्यवस्था :–** दक्षिण भारत के प्रमुख राजवंशों की शासन व्यवस्था में राजा सर्वोपरि माना जाता था। राजा शासन की सहायता हेतु मंत्रियों एवं कर्मचारियों की नियुक्ति एवं नियंत्रण करता था। पल्लवों ने राज्य को राष्ट्र, कोट्टम तथा ग्रामों में विभाजित किया था। चोलों ने मण्डल तथा नाडू में विभाजन किया। तमिल प्रदेश के इन नाडुओं के कारण ही वर्तमान नाम तमिलनाडू रखा गया है। उस समय स्थानीय स्वशासन संस्थाएँ कार्य करती थी। ग्राम सभाओं का प्रमुख स्थान था। ग्राम सभाएँ सामान्य प्रबन्ध के अतिरिक्त न्याय, कानून एवं दान की व्यवस्था भी देखती थी।
- **साहित्य एवं कला की उन्नति :–** दक्षिण भारत में तमिल एवं संस्कृत दोनों भाषाओं की उन्नति हुई। राजा साहित्य प्रेमी थे। राष्ट्रकूटों के समय वल्लभी और कन्हेरी विश्वविद्यालय प्रसिद्ध थे। काँची विद्या का बड़ा केन्द्र था। तमिल भाषा में लिखित 'कम्बन रामायण' दक्षिण में बहुत लोकप्रिय हैं। जैन व बौद्ध विद्वानों ने भी अनेक ग्रन्थ लिखे। दक्षिण भारत के राजाओं की मंदिर एवं मूर्तियाँ निर्माण कराने में विशेष रुचि थी। ये मंदिर आज भी कला के उत्तम उदाहरण हैं। मूर्तियाँ पत्थर या काँसे की होती थी। चालुक्य राजाओं ने हिन्दू देवी देवताओं के मंदिर बनवाए। इनमें वातापी का विरुपाक्ष मंदिर प्रसिद्ध है। महाबलीपुरम का मंदिर, ऐलोरा का कैलाश मंदिर और होसबल मंदिर इसी काल में बने। तंजौर के वृहदेश्वर मंदिर में धातु की बनी नटराज की मूर्ति स्थापित है। अजंता के भित्ति चित्र और वृहदेश्वर मंदिर में देवचित्र चित्रकला के अनुपम उदाहरण हैं। चोल शासकों द्वारा विष्णु, राम–सीता आदि की सुन्दर मूर्तियाँ बनवाई गई। दक्षिण के शासकों, विशेष रूप से चोल शासकों ने भारतीय सभ्यता और संस्कृति के संरक्षण में विशेष योगदान दिया है।

गतिविधि–

पाठ में आए मन्दिरों व मूर्तियों के चित्रों का संकलन करें एवं इनके विषय में जानकारी प्राप्त करें।

उत्तर भारत के प्रमुख राजवंश

आठवीं से बारहवीं शताब्दी तक जिन प्रमुख राजवंशों ने उत्तर भारत में शासन किया उनमें से कुछ राजवंश निम्नलिखित हैं :–

1. **प्रतिहार वंश :–** राजा मिहिर भोज इस वंश का सबसे शक्तिशाली शासक था। वह 840 ई. में शासक बना और 50 वर्ष तक राज्य किया। प्रतिहार शासकों ने सिन्ध से आगे बढती हुई विदेशी

www.rajteachers.com

शक्ति को लम्बे समय तक रोके रखा था और उत्तर भारत में उनका विस्तार नहीं होने दिया। प्रतिहार शासक साहित्य और कला प्रेमी थे। इनके शासन में भारत ने सांस्कृतिक उन्नति की।

2. **गहडवाल वंश :–** इस वंश का संस्थापक चन्द्रदेव था। उसने प्रतिहारों को हराकर कन्नौज पर अधिकार कर लिया। गहडवाल वंश का अतिंम शासक जयचन्द था। वह 1170 ई.में शासक बना। गौर वंश के शासक मुहम्मद गौरी ने जयचन्द पर आक्रमण किया और कन्नौज पर अधिकार कर गहडवाल वंश की सत्ता समाप्त कर दी।
3. **चौहान वंश :–** इस वंश का राज्य अजमेर–सांभर के भूभाग पर फैला हुआ था। चौहान वंश का प्रथम शक्तिशाली शासक विग्रह राज था। पृथ्वीराज चौहान तृतीय इस वंश का सबसे प्रतापी शासक माना जाता है। उसने 1182 ई. में चन्देल शासक परमाल को पराजित कर साम्राज्य विस्तार किया एवं 1191 ई. में अफगानिस्तान के गौर वंश के शासक मुहम्मद गौरी को तराईन के प्रथम युद्ध में पराजित किया व द्वितीय युद्ध में पृथ्वीराज को पराजय का सामना करना पड़ा।
4. **गुहिल वंश :–** प्राप्त सिक्कों से यह माना जाता हैं कि इस वंश के प्रथम शासक श्री गुहिल थे। मेवाड़ के इस शक्तिशाली राजवंश का पराक्रमी शासक बप्पा रावल के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हुआ। बप्पा रावल ने नागभट्ट प्रथम आदि शासकों का संघ बनाकर सिंध को अरब आक्रमणकारियों से स्वतंत्र किया तथा अनेक क्षेत्रों को जीतकर अपना प्रभाव स्थापित किया। आगे चल कर यही वंश सिसोदिया वंश कहलाया। इस वंश में राणा हम्मीर, क्षेत्र सिंह, राणा मोकल राणा कुम्भा, राणा सांगा, राणा प्रताप एवं राणा राज सिंह प्रतापी शासक गिने जाते हैं। मेवाड़ का यह शक्तिशाली राजवंश, भारतीय इतिहास में पराक्रमी और बाह्य आक्रमणकारियों के विरुद्ध संघर्ष के लिये प्रसिद्ध हैं।

इन प्रमुख राजवंशों के साथ उत्तर भारत में 'चन्देल वंश' भी था। आल्हा और उदल इसी शासक के वीर सामन्त थे। 'परमार वंश' का प्रमुख प्रतापी शासक राजा भोज था। 'सोलंकी वंश' के समय महमूद गजनवी ने सोमनाथ मंदिर पर आक्रमण कर मंदिर को लूटा व तोड़ा। 'पालवंश' के काल में विक्रमशिला विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। 'सेनवंश' के काल में गीत गोविन्द के रचयिता जयदेव उनके दरबारी थे।

गतिविधि–

उत्तर भारत के अन्य प्रमुख राजवंशो की जानकारी प्राप्त करें तथा उनके राजाओं के चित्रों का संकलन करें।

- **शासन व्यवस्था :–** उत्तर भारत के स्वतंत्र राजवंशों की शासन व्यवस्था पूर्णतः निरंकुश थी । परन्तु शासक अपने मंत्रियों से सलाह भी लेते थे। सामंत प्रथा प्रचलित थी, जो स्वतंत्र रुप से शासक के अधीन रहते हुए कार्य करते थे। उस समय ग्राम पंचायतें थी जो राजकीय हस्तक्षेप से मुक्त थी।
- **साहित्य एवं कला की उन्नति** :– इस काल में संस्कृत भाषा में विभिन्न विषयों पर ग्रन्थ लिखे गये, जिनमें माघ का शिशुपालवध, शारवि का किरतार्जुनियम, कल्हण की राजतंरगिणी और जयदेव का गीत गोविन्द प्रमुख हैं। इस काल में स्वतंत्र राजवंशों के शासकों ने अनेक सुन्दर भवनों एवं मंदिरों का

www.rajteachers.com

निर्माण कराया, जिनमें भुवनेश्वर का लिंगराज मंदिर, कोणार्क का सूर्य मंदिर, पुरी का जगन्नाथ मंदिर तथा ग्वालियर, चित्तौड़, रणथम्भौर के दुर्ग, राजस्थान के आबूपर्वत पर देलवाड़ा में सफेद संगमरमर के जैन मन्दिर आदि बनाये गये। चित्रकला के क्षेत्र में खूब उन्नति हुई। दीवारों पर पशु पक्षियों व वृक्ष लताओं के सुन्दर चित्र बनाये गये।

पुरी का जगन्नाथ मन्दिर

नालन्दा विश्वविद्यालय

कोणार्क का सूर्य मन्दिर

रणथम्भौर का दुर्ग

सम्राट हर्ष के बाद उत्तर और दक्षिण भारत के इन स्वतंत्र राजवंशों का काल, वीर गाथाओं का काल था। राजनीतिक अस्थिरता होते हुए भी इस काल में भारतीय कला, संस्कृति एवं साहित्य की खूब उन्नति हुई जो आज भी हमारे लिए प्रेरणास्पद हैं।

शब्दावली

गंगेकौण्ड	–	गंगा नदी के क्षेत्र का विजेता
निरंकुश शासक	–	तानाशाह शासक
संरक्षण	–	सुरक्षा

www.rajteachers.com

अभ्यास प्रश्न

1. निम्न प्रश्नों के सही उत्तर कोष्ठक में लिखें–

(I) जयदेव की कृति का नाम है –

(अ) कादम्बरी (ब) रत्नावली

(स) गीत गोविन्दम् (द) हर्षचरित ( )

(ii) दक्षिण भारत का राजवंष है –

(अ) प्रतिहार (ब) चालुक्य

(स) गुहिल (द) चौहान ( )

2 हर्ष ने अपनी राजधानी किसे बनाया?

3 गंगेकौण्ड की उपाधि किसने धारण की?

4 हर्ष की रचनाओं के नाम लिखिए।

5 बाणभट्ट की प्रमुख रचनाओं के नाम लिखो।

6 हर्ष के प्रभाव क्षेत्र पर टिप्पणी लिखो ।

7 हर्ष लेखक तथा विद्वानों का आश्रयदाता था, स्पष्ट करो।

8 नालन्दा विश्वविद्यायालय पर टिप्पणी लिखो।

9 दक्षिण भारत के प्रमुख राजवंश कौन कौन से थे? वर्णन करो।

10 दक्षिण भारत में साहित्य एवं कला की उन्नति का वर्णन करो।

11 उत्तर भारत के प्रमुख राजवंश कौनसे थे? वर्णन करो।

12 आठवीं से बारहवीं शताब्दी तक भारत के इतिहास की प्रमुख घटनाओं का वर्णन करो।

गतिविधि–

1. दक्षिण के मन्दिरों के चित्रों का संकलन करो व इनकी अपने आसपास के मन्दिरों से तुलना करो।
2. मानचित्र की सहायता से सम्राट हर्ष के प्रभाव क्षेत्र की जानकारी प्राप्त करें।

www.rajteachers.com

अध्याय 17

राजस्थान एवं दिल्ली सल्तनत

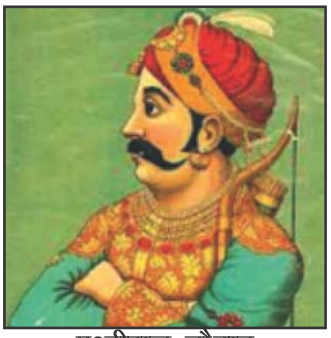
पृथ्वीराज चौहान

जैसा कि हम पिछले पाठ में पढ चुके हैं कि सम्राट हर्ष की मृत्यु के पश्चात् भारत की राजनीतिक एकता समाप्त हो गई। भारत के विभिन्न भागों में स्वतंत्र राज्य बन गए। इन नए राज्यों में अपनी प्रभुता स्थापित करने के लिए संघर्ष छिड़ गया। इस कारण भारत राजनैतिक और सैनिक दृष्टि से कमजोर हो गया। इस राजनीतिक अस्थिरता का लाभ उठाकर बाहरी आक्रमणकारियों ने भारत पर हमले किए।

तुर्की आक्रमणकारियों में गजनी के महमूद गजनवी ने भारत पर 17 बार आक्रमण किए। इन आक्रमणों में महमूद ने मंदिरों को तोड़ा और भारत से अपार धन–संपत्ति लूट कर ले गया। उसने 1025 ई. में गुजरात के प्रसिद्ध सोमनाथ मंदिर पर आक्रमण किया और मंदिर को तोड़–फोड़ कर प्रचुर मात्रा में धन लूट कर ले गया। महमूद के आक्रमणों से भारत की संस्कृति के प्रतीक कई मंदिर और स्मारक नष्ट हो गए।

महमूद गजनवी के बाद गौर प्रदेश के मुहम्मद गौरी ने भारत पर आक्रमण किए और भारत में मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना का बीजारोपण किया। गौरी ने भारत में कई लड़ाइयाँ लड़ी, परन्तु उसके अजमेर के शासक पृथ्वीराज चौहान के साथ लड़े गए तराइन के युद्ध महत्वपूर्ण रहे। तराइन के प्रथम युद्ध में गौरी बुरी तरह पराजित हुआ और भाग गया। किन्तु तराइन के दूसरे युद्ध में पृथ्वीराज चौहान हार गया। भारत के इतिहास में यह एक निर्णायक युद्ध था। इस विजय के बाद विदेशी आक्रमणकारी तुर्कों को भारत में शासन–सत्ता प्राप्त करने का अवसर मिल गया। भारत में गौरी का अन्तिम अभियान 1206 ई. में खोखरों के विरूद्ध था। यह अभियान समाप्त कर गौरी जब लौट रहा था तो झेलम के किनारे खोखरों ने उसकी हत्या कर दी।

मुहम्मद गौरी के कोई पुत्र नहीं था। उसकी अचानक मृत्यु से उसके सेनापतियों और सूबेदारों में सत्ता प्राप्ति के लिए संघर्ष शुरू हो गया। इस संघर्ष में गौरी का गुलाम और सूबेदार कुतुबुद्दीन ऐबक विजयी हुआ। इसके साथ ही भारत में प्रथम मुस्लिम शासन की स्थापना हुई।

दिल्ली सल्तनत की स्थापना 1206 ई. में हुई और 1526 ई. में हुए पानीपत के प्रथम युद्ध में इब्राहिम लोदी की पराजय तक यह सल्तनत राज चला। इस दौरान विभिन्न राजवंशों ने दिल्ली पर राज किया, जिनमें दास वंश, खिलजी वंश, तुगलक वंश, सैयद वंश और लोदी वंश प्रमुख हैं। इन वंशो को राजस्थान से निरन्तर चुनौती मिलती रही।

हम्मीरदेव चौहान

हम्मीर रणथम्भौर के चौहान शासकों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण शासक था। इसके बारे में हमें नयचन्द्र सूरी कृत 'हम्मीर महाकाव्य', जोधराज कृत 'हम्मीर रासो' आदि ग्रन्थों से जानकारी मिलती है। 1282 ई. में वह अपने पिता जैत्रसिंह के जीवित रहते हुए ही गद्दी पर बिठा दिया गया। हम्मीर महत्वाकांक्षी

www.rajteachers.com

शासक था और उसके गद्दी पर बैठने के समय दिल्ली सल्तनत में अराजकता फैली हुई थी। ऐसी स्थिति में दिल्ली के शासकों की ओर से निश्चिंत होकर हम्मीर ने अपनी विजय यात्रा प्रारम्भ की। उसने 1291 ई.से पूर्व तक दिग्विजय करके अपनी सीमा व शक्ति में अभिवृद्धि कर ली थी। उसने कई राज्यों को जीतकर अपने साम्राज्य का अंग बनाया और कई राज्यों से केवल कर ही लिया।

हम्मीरदेव चौहान

हम्मीर ने भीमरस के शासक अर्जुन, धार के परमार शासक और मेवाड़ के शासक समर सिंह को हराकर राजस्थान में अपना दबदबा स्थापित कर लिया। मेवाड़ के बाद वह आबू, वर्धनपुर (काठियावाड़), पुष्कर, चम्पा, त्रिभुवनगिरी होता हुआ स्वदेश लौटा। इन विजयों से राजस्थान में रणथम्भौर के चौहानों की राजनीतिक प्रतिष्ठा बढ़ गई।

हम्मीर के इस बढ़ते कद के कारण खिलजी वंश का संस्थापक जलालुद्दीन खिलजी रणथम्भौर की ओर आकर्षित हुआ। 1291 ई. में जलालुद्दीन ने झाईन के दुर्ग पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया और दुर्ग की शिल्पकला और मंदिरों को काफी क्षति पहुँचाई। इस जीत के बाद जलालुद्दीन रणथम्भौर की ओर बढ़ा। हम्मीर ने दुर्ग में रसद आदि का प्रबंध कर सुरक्षात्मक रणनीति द्वारा सुल्तान का प्रतिरोध किया। जलालुद्दीन को इस आक्रमण में काफी दिनों के प्रयास के बाद भी सफलता नहीं मिली तो उसे युद्ध बंद करके वापस दिल्ली लौटना पड़ा। सुल्तान के लौटते ही हम्मीर ने झाईन के दुर्ग पर पुनः अधिकार कर लिया। 1292 ई. में जलालुद्दीन ने फिर रणथम्भौर को जीतने का प्रयास किया किन्तु वह सफल नहीं हो सका।

1296 ई. में अपने चाचा जलालुद्दीन की हत्या कर अलाउद्दीन खिलजी दिल्ली का सुल्तान बना। अलाउद्दीन अत्यन्त महत्वाकांक्षी शासक था और सम्पूर्ण भारत को जीतने की लालसा रखता था। दिल्ली के निकट सामरिक महत्व के रणथम्भौर के अभेद्य दुर्ग को जीतने के लिए अलाउद्दीन लालायित था। हम्मीर ने सुल्तान के कुछ शत्रुओं को भी अपने यहाँ शरण दे रखी थी, इससे अलाउद्दीन बहुत क्रोधित हुआ।

रणथम्भौर पर आक्रमण

सुल्तान के आदेश पर उलुग खाँ और नुसरत खाँ सेना लेकर रणथम्भौर की ओर बढ़े। दोनों की संयुक्त सेना ने झाईन की ओर से रणथम्भौर पर आक्रमण किया। सेना ने आसानी से झाईन पर अधिकार कर लिया और जी भर कर नगर को लूटा। हम्मीर के आदेश पर राजपूती सेना झाईन की ओर बढ़ी तथा तुर्की सेना को खदेड़ दिया। तुर्की सेना ने जवाबी हमला किया और रणथम्भौर पर घेरा डाल दिया। रणथम्भौर दुर्ग की प्राचीर से राजपूती सेना के प्रहारों से नुसरत खाँ बुरी तरह घायल हो गया और मारा गया। राजपूती सेना ने दुर्ग से निकलकर तुर्की सेना पर जोरदार हमला किया तो उलुग खाँ को अपने प्राण बचाने के लिए भागना पड़ा व उसकी सेना भी बिखर गई।

www.rajteachers.com

अब अलाउद्दीन खुद एक विशाल सेना लेकर रणथम्भौर आया। लगभग एक वर्ष तक सुल्तान रणथम्भौर दुर्ग पर घेरा डाले रहा, पर उसे कोई सफलता नहीं मिली। सैन्य क्षेत्र में सफलता नहीं मिलने पर अलाउद्दीन ने छल–कपट से दुर्ग को जीतने के प्रयास शुरू कर दिए। सुल्तान ने संधि वार्ता के बहाने हम्मीर के सेनापतियों को बुलाया और उन्हें प्रलोभन देकर अपनी ओर मिला लिया। उधर किले में अब रसद सामग्री खत्म हो रही थी और जो बची थी उसमें अलाउद्दीन ने हड्डियों का चूरा मिलवाकर अपवित्र कर दिया। जल स्रोतों को भी अपवित्र करवा दिया। ऐसी स्थिति में भूखे–प्यासे राजपूत सैनिक केसरिया वस्त्र पहन कर दुर्ग से बाहर आ गए और शत्रु से भिड़ गए। दिल्ली की विशाल सेना के सामने राजपूती सेना टिक न सकी। हम्मीर वीरतापूर्वक लड़ता हुआ मारा गया। 1301 ई. में अलाउद्दीन का रणथम्भौर पर अधिकार हो गया।

हम्मीर विद्वानों व कलाकारों का आश्रयदाता था। वह शूरवीर योद्धा व कुशल सेनानायक था। अलाउद्दीन ने सैनिक बलबूते पर नहीं, बल्कि छल–कपट से रणथम्भौर को जीता था। हम्मीरदेव ने 17 युद्ध किए थे, जिनमें से वह 16 युद्धों में विजयी रहा था। राजा हम्मीरदेव का नाम इतिहास में स्मरणीय रहेगा।

रावल रतनसिंह

1302 ई. में रावल रतनसिंह मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ में राजसिंहासन पर बैठा। एक वर्ष के भीतर ही अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया। मेवाड़ के बढ़ते हुए प्रभाव, साम्राज्य विस्तार की लालसा, दुर्ग के सामरिक महत्व आदि के कारण अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया।

अलाउद्दीन एक विशाल सेना के साथ दिल्ली से रवाना हुआ और चित्तौड़ के समीप गंभीरी और बेड़च नदियों के किनारे अपना सैनिक शिविर स्थापित किया। चित्तौड़ पर आठ माह के घेरे के पश्चात् भी अलाउद्दीन को कोई सफलता नहीं मिली। तब अलाउद्दीन ने कूटनीति का सहारा लिया एवं संधि वार्ता के लिए पहल की। संधि वार्ता के दौरान रतनसिंह को बात–चीत करते हुए अपने पड़ाव तक ले गया एवं उसे कैद कर लिया। गौरा और बादल के प्रयासों से रतनसिंह अलाउद्दीन की कैद से मुक्त हुए और वे पुनः किले में आ गए। अब युद्ध अवश्यभावी हो गया था। अतः दोनों के मध्य भीषण युद्ध हुआ। किले के भीतर रसद सामग्री भी खत्म हो गई थी और राजपूत सेना के लिए किले के भीतर से निकल कर शत्रु सेना पर टूट पड़ना आवश्यक हो गया था। राजपूत सरदारों ने केसरिया वस्त्र धारण किए और किले के द्वारा खोल दिए। रावल रतनसिंह तथा उसके सेनापति गौरा व बादल वीरतापूर्वक लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। इधर रानी पद्मिनी के नेतृत्व में विशाल संख्या में स्त्रियों ने किले के अन्दर जौहर किया। यह चित्तौड़ का पहला जौहर था। चित्तौड़ पर अलाउद्दीन का अधिकार हो गया। विजय के बाद सुल्तान ने चित्तौड़ की जनता का कत्लेआम करने का आदेश दिया। मुस्लिम सैनिकों ने जी भर कर जनता को लूटा और भव्य भवनों और मंदिरों को धराशायी कर दिया। कुछ दिनों बाद मेवाड़ का राज्य और चित्तौड़ का दुर्ग अपने पुत्र को सौंपकर अलाउद्दीन दिल्ली लौट गया।

सुल्तान के दिल्ली लौटने के बाद राजपूत वीरों ने चित्तौड़ जीतने के प्रयास जारी रखे। सरदार

www.rajteachers.com

हम्मीर, जो सिसोदा गाँव का था, ने 1326 ई. के आसपास चित्तौड़ को पुनः जीत लिया और मेवाड़ में 'सिसोदिया' राजवंश की नींव ड़ाली।

कान्हड़ देव

कान्हड़ देव

राजस्थान के दक्षिण–पश्चिम में जालोर स्थित है। जालोर पर चौहान वंशीय राजाओं का शासन रहा। 1305 ई. में कान्हड़ देव जालोर का शासक बना। साम्राज्य विस्तार की आकांक्षा, जालोर की महत्वपूर्ण व्यापारिक एवं सामरिक स्थिति, कान्हड़ देव के बढ़ते शक्ति प्रभाव को रोकने आदि कारणों से अलाउद्दीन जालोर को जीतना चाहता था।

अलाउद्दीन ने सोमनाथ मंदिर को ध्वंस करने तथा गुजरात विजय के लिए उलुग खाँ और नुसरत खाँ को एक विशाल सेना देकर भेजा। गुजरात जाने का सीधा मार्ग जालोर होकर गुजरता था। अलाउद्दीन ने अपनी सेना को जालोर होकर गुजरने के लिए अनुमति माँगी, जिसे कान्हड़ देव ने ठुकरा दिया। सुल्तान की सेना मेवाड़ होकर निकल गई। इस सेना ने मार्ग में पड़ने वाले गाँवों को लूटा और नष्ट–भ्रष्ट किया। गुजरात में काठियावाड़ को जीता और सोमनाथ के मंदिर तथा शिवलिंग को तोड़ डाला। इस तबाही तथा पवित्र स्थलों के ध्वंस से कान्हड़ देव काफी क्रोधित हुआ और उसने सुल्तान को सबक सिखाने का निश्चय कर लिया।

कान्हड़ देव ने गुजरात में तबाही मचाकर लौट रही सुल्तान की सेना पर भीषण आक्रमण किया और गुजरात से लूट कर लाया गया धन छीन लिया। सुल्तान ने जालोर को जीतने के लिए अपने सेनापतियों और सेना को भेजा। ऐसे ही एक संघर्ष में कान्हड़ देव का युवा पुत्र वीरमदेव मारा गया। अंततः 1308 ई. में अलाउद्दीन ने एक विशाल सेना को जालोर पर अधिकार करने के लिए दिल्ली से रवाना किया।

1308 ई. में जालोर के प्रवेश द्वार सिवाणा पर मुस्लिम सेना ने आक्रमण किया, पर उसे सफलता नहीं मिली। बाद में देशद्रोहियों की मदद से छल–कपट द्वारा खिलजी की सेना ने सिवाणा के दुर्ग को जीत लिया। इस पर कान्हड़ देव ने सभी राजपूत सरदारों का आह्वान किया। फलतः जगह–जगह खिलजी सेना पर प्रहार होने लगे। मेड़ता के पास मलकाना में राजपूत सैनिक सुल्तान की सेना पर टूट पड़े और सेनापति शम्स खाँ को उसकी पत्नी सहित बंदी बना लिया। ये समाचार जब सुल्तान के पास पहुँचे तो वह स्वयं एक विशाल सेना लेकर जालोर के लिए चल पड़ा।

जालोर पहुँचकर सुल्तान ने दुर्ग पर घेरा डाला। कान्हड़ देव ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ शत्रु का मुकाबला किया। लेकिन घेरे के लम्बे समय तक चलने से किले के भीतर मौजूद रसद सामग्री खत्म होने लगी। इससे राजपूती सेना की स्थिति कमजोर होने लगी और सुल्तान की सेना की स्थिति मजबूत होती गई। ऐसी संकटपूर्ण स्थिति में एक दहिया सरदार ने कान्हड़ देव से विश्वासघात करते हुए राज्य पाने के लालच में खिलजी सेना को एक गुप्त दरवाजे से किले में प्रवेश करवा दिया। इस विश्वासघात का पता चलने पर राजद्रोही पति को उसकी पत्नी ने तलवार से टुकड़े–टुकड़े कर मार डाला। दुर्ग में आसानी से पहुँची खिलजी सेना का कान्हड़ देव ने अपने राजपूती सैन्य सरदारों के साथ वीरतापूर्वक मुकाबला किया, किन्तु वह वीरगति को प्राप्त हुआ।

www.rajteachers.com

कान्हड़ देव एक शूरवीर योद्धा, देशभक्त एवं स्वाभिमानी शासक था।

महाराव शेखा

महाराव शेखा

राव शेखा पंद्रहवीं शताब्दी का एक अद्वितीय व्यक्तित्व था। उसका जन्म 1433 ई. में हुआ। कछवाहा वंशीय होने से आमेर राज्य का सम्मान बनाये रखने हेतु वह उसे वार्षिक कर देता था। आमेर शासक चन्द्रसेन शेखा के बड़े भ्राता थे। उन्हें शेखा का स्वतंत्र राज्य मान्य नहीं था और उसको किसी प्रकार आमेर की अधीनता में लाने के लिए प्रयासरत थे। राव शेखा, जो एक स्वाभिमानी व्यक्ति थे, को आमेर की अधीनता स्वीकार नहीं थी। अतः दोनों भाइयों के मध्य एक दशक तक युद्व होते रहे। अंत में 1471 ई. के युद्व में शेखा की विजय हुई। इसलिए चंद्रसेन को शेखा को एक स्वतंत्र शासक स्वीकार करना पड़ा।

शेखा युद्वकला में पारंगत था। इसके बाद उसने अपने आस–पास के स्थानों को हस्तगत करना शुरू किया। परिणामस्वरूप भिवानी, हिसार व अन्य अनेक क्षेत्रों पर शेखा का आधिपत्य हो गया। इनके राज्य में गाँवों की संख्या 360 तक पहुँच गई थी। इसके राज्य अमरसर का क्षेत्रफल आमेर राज्य से भी बड़ा था। राव शेखा ने शासक के रूप में धार्मिक सहिष्णुता का भी परिचय दिया। इन्हीं के प्रयासों से पठानों ने गाय के माँस को न खाने का संकल्प लिया, वे नारी अस्मिता के रक्षक थे। नारी के सम्मान को सुरक्षित रखने के लिए अपने जीवन का सन् 1488 में उत्सर्ग कर दिया। जहाँ इनकी मृत्यु हुई वहाँ उनकी यादगार में एक छतरी बनी हुई है।

महाराणा कुम्भा

महाराणा कुम्भा

महाराणा कुम्भा के शासनकाल की जानकारी 'एकलिंग महात्म्य', 'रसिक प्रिया', 'कुम्भलगढ़ प्रशस्ति' आदि से मिलती है। वह 1433 ई. में गद्दी पर बैठा। कुम्भा ने अपने शासनकाल के प्रारंभ में स्थानीय और पड़ौसी राज्यों को जीत कर अपनी शक्ति को बढ़ाया। महाराणा कुम्भा ने 1437 ई. में मालवा के सुल्तान महमूद खिलजी पर भीषण आक्रमण किया और दोनों सेनाओं के मध्य सारंगपुर के पास जोरदार संघर्ष हुआ।

इस युद्ध में महमूद खिलजी की सेना को परास्त होकर भागना पड़ा। इस भागती सेना का कुम्भा ने माण्डू तक पीछा किया और महमूद को बंदी बना लिया, किन्तु 6 माह चित्तौड़ में रखने के बाद महमूद को मुक्त कर दिया। मुक्त होकर महमूद ने बार–बार कुम्भा के विरूद्ध युद्ध किए, मगर वह कभी सफल नहीं हुआ। इसके बाद कुम्भा ने गुजरात के शासक कुतुबुद्दीन और नागौर के शासक शम्सखाँ की संयुक्त सेना को तथा मालवा और गुजरात की संयुक्त सेना को हराया और अपने समय का सर्वाधिक शक्तिशाली शासक बन गया।

कुम्भा एक पराक्रमी योद्धा और कुशल रणनीतिज्ञ ही नहीं था, वरन् वह साहित्य व कला का

www.rajteachers.com

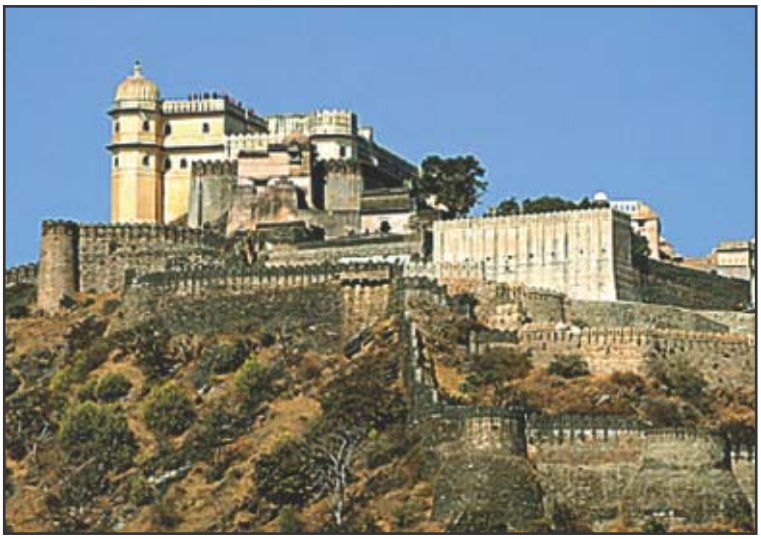

कुम्भलगढ़ किले का एक दृश्य

महान् संरक्षक भी था। महाराणा कुम्भा का काल भारतीय कला के इतिहास में स्वर्णिम काल कहा जा सकता है। मेवाड़ में स्थित 84 दुर्गों में से 32 दुर्ग कुम्भा द्वारा निर्मित हैं। इनमें कुम्भलगढ़ का दुर्ग विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जो कि अजय दुर्ग के नाम से भी जाना जाता है। दुर्ग के चारों ओर विशाल प्राचीर है, जिसे चीन की दीवार के बाद विश्व की दूसरी सबसे लम्बी दीवार माना जाता है। इसे बुर्जियों द्वारा सुरक्षित किया गया था। महाराणा कुम्भा का 1468 ई. में स्वर्गवास हुआ।

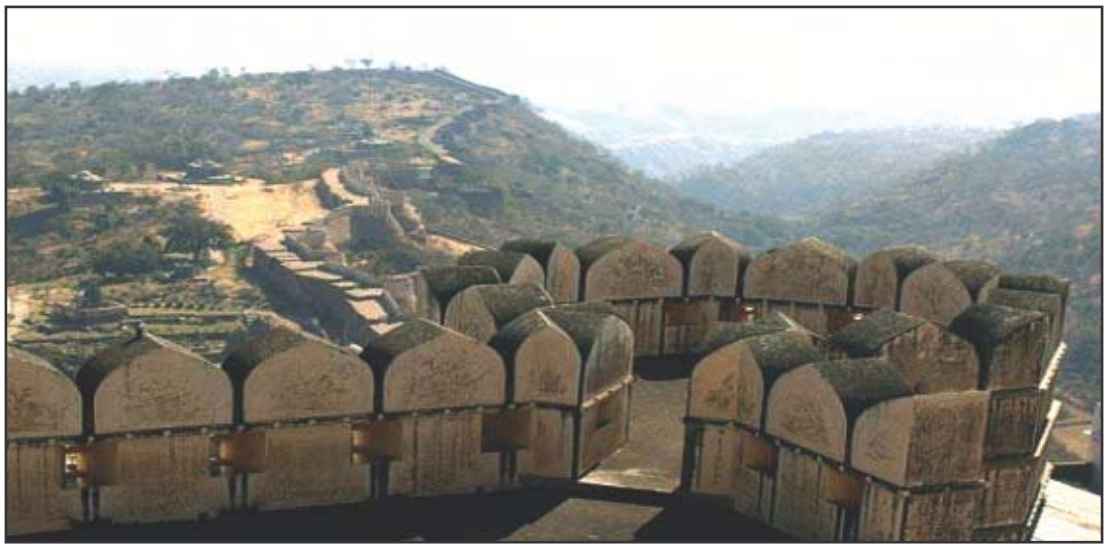

प्राचीर बुर्ज

शब्दावली

खोखर	–	वर्तमान पाकिस्तान के पहाड़ी क्षेत्र की एक जाति
शेखावाटी	–	राव शेखा द्वारा विजित क्षेत्र जिसमें वर्तमान चुरू, झूंझनू, सीकर जिले आते हैं।
कुंभलगढ़ प्रशस्ति	–	कुंभलगढ़ दुर्ग में रखा हुआ अभिलेख।

www.rajteachers.com

अभ्यास प्रश्न

1. स्तम्भ 'अ' को स्तम्भ 'ब' से सुमेलित किजिए –

स्तम्भ 'अ'	स्तम्भ 'ब'
1. कान्हड़ देव	अजमेर
2. हम्मीर देव	जालोर
3. महाराणा कुम्भा	रणथम्भौर
4. पृथ्वीराज चौहान	मेवाड़

2. तराइन के प्रथम युद्ध में कौन विजयी रहा?
3. मुहम्मद गौरी के बाद सत्ता प्राप्ति के संघर्ष में कौन विजयी रहा?
4. अलाउद्दीन खलजी रणथम्भौर पर आक्रमण क्यों करना चाहता था?
5. अलाउद्दीन के चित्तौड़ पर आक्रमण का संक्षिप्त विवरण लिखिए।
6. जालोर पर अलाउद्दीन खलजी के आक्रमण का वर्णन कीजिए।
7. महाराणा कुम्भा के शासनकाल की जानकारी कौन–कौन से स्रोतों से प्राप्त होती है?
8. महाराणा कुम्भा के शासन की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।
9. राव शेखा के जीवन से क्या प्रेरणा मिलती है?

गतिविधि–

1. सल्तनतकाल में निर्मित राजस्थान के किलों, मंदिरों व अन्य स्मारकों के चित्रों का संग्रह कीजिए।
2. दिल्ली व राजस्थान के राजवंशों के काल को तिथि वर्ष क्रमानुसार लिखो।

www.rajteachers.com

अध्याय 18

राजस्थान के राजवंश एवं मुगल

राजस्थान के राजपूत राज्यों ने भारत में आने वाले विदेशी आक्रमणकारियों का प्रारंभ से ही प्रतिरोध किया। पृथ्वीराज के बाद मेवाड़ के महाराणा सांगा, मारवाड़ के मालदेव, राव चन्द्रसेन, सिरोही के देवड़ा सूरताण इत्यादि ने इस संघर्ष को जारी रखा।

सन् 1526 ई. के पानीपत के प्रथम युद्ध में इब्राहिम लोदी को हराकर बाबर ने दिल्ली पर मुगल साम्राज्य की नींव रखी, किन्तु बाबर की मृत्यु के बाद उसका बेटा हुमायूँ बिहार से आए अफगान सेनापति शेरशाह सूर से हार गया। दिल्ली पर शेरशाह सूर के वंशज अधिक समय तक शासन नहीं संभाल सके। 15 वर्ष के भीतर उसके एक प्रधान हरियाणा में रेवाड़ी के हेमचन्द्र जो कि हेमू के नाम से प्रसिद्ध है, ने दिल्ली की गद्दी पर अधिकार कर लिया। हेमचन्द्र, 'विक्रमादित्य' के नाम से दिल्ली की गद्दी पर बैठा। उसने अपने नाम से सिक्के जारी किए। एक माह बाद नवम्बर, 1556 ई. में मुगल सेना ने उसे परास्त कर दिया। कालान्तर में दिल्ली पर लम्बे समय तक मुगलों का शासन रहा। इन शासकों में मुख्यतः अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब इत्यादि थे। मुगल शासकों का सर्वाधिक प्रतिरोध मेवाड़ के महाराणाओं ने किया, जिसमें वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप प्रमुख थे।

वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप महान्

वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप का जन्म 9 मई, 1540 ई. (ज्येष्ठ शुक्ल 3, विक्रम संवत् 1597) को कुम्भलगढ़ में हुआ। इनके पिता का नाम महाराणा उदय सिंह व माता का नाम जैवन्ता बाई सोनगरा था। महाराणा उदयसिंह की 28 फरवरी, 1572 ई. में मृत्यु हो गई और उसी दिन महाराणा प्रताप का 32 वर्ष की आयु में गोगुन्दा में राज्यारोहण हुआ। यह शासन महाराणा प्रताप के लिए कांटों का मुकुट था, किन्तु स्वतन्त्रता प्रेमी महाराणा प्रताप ने इसे सहर्ष स्वीकार किया। वे तनिक भी विचलित नहीं हुए। महाराणा प्रताप ने कुम्भलगढ़ और गोगुन्दा को केन्द्र बनाकर समस्त मेवाड़ राज्य को स्वतन्त्र कराने की दृढ़ प्रतिज्ञा की। जनमानस को स्वतन्त्रता एवं संस्कृति की रक्षा के लिए प्रेरित किया। जनजाति वर्ग को संगठित कर उन्हें अपनी सेना का अंग बनाया। कुम्भलगढ़ से लगे गोड़वाड़ भू–भाग और अरावली की घाटियों में सैनिक व्यवस्था की। सिरोही व गुजरात से लगी सीमा व्यवस्था को संगठित किया।

महाराणा प्रताप

मेवाड़ से 1567 – 1568 ई. में हुए संघर्ष की भयंकरता से अकबर परिचित था। अतः शान्ति

www.rajteachers.com

प्रयासों एवं कूटनीति से समस्या को सुलझाने का प्रयास किया। उसने एक–एक करके चार शिष्ट मंडलों को महाराणा प्रताप के पास भेजा किन्तु महाराणा प्रताप ने उसके कूटनीतिक प्रयासों को एक दम विफल कर दिया।

हल्दीघाटी का युद्ध

प्रताप को अब अनुभव हो गया था कि युद्ध अवश्यंभावी है, तब प्रताप ने युद्ध की तैयारी प्रारंभ कर दी। मेवाड़ के मुख्य पहाड़ी नाकों (पहाड़ी क्षेत्र में प्रवेश के सँकडे मार्ग) एवं सामरिक महत्व के स्थानों पर अपनी स्थिति मजबूत करनी शुरु कर दी। मैदानी क्षेत्रों से लोगों को पहाड़ी इलाकों में भेज दिया तथा खेती करने पर पाबंदी लगा दी, ताकि शत्रु सेना को रसद सामग्री नहीं मिल सके। प्रताप को सभी वर्गों का पूर्ण सहयोग मिला। अतः जनता युद्ध के लिए मानसिक रूप से तैयार थी। उधर अकबर ने अन्य सैन्य अभियानों से मुक्ति पाकर मेवाड़ की ओर ध्यान केन्द्रित किया। उसने मानसिंह को प्रधान सेनानायक बनाकर प्रताप के विरूद्ध भेजा, जो लगभग पाँच हजार सैनिकों के साथ आया। 18 जून, 1576 ई. को प्रातः हल्दीघाटी के मैदान में युद्ध शुरू हुआ। महाराणा प्रताप ने युद्ध की शुरूआत की। उनके साथ रावत किशनदास, भीमसिंह डोडिया, रामदास मेड़तिया, रामशाह तँवर, झाला मान, झाला बीदा, मानसिंह सोनगरा आदि थे। प्रताप के चन्दावल दस्ते में पुरोहित गोपीनाथ, जयमल मेहता, चारण जैसा आदि तथा मध्य भाग के बाँयी ओर भामाशाह एवं अन्य सैनिक थे। चंदावल में ही घाटी के मुहानों पर राणा पूंजा के नेतृत्व में भील लोग तीर कमान के साथ मौजूद थे। हरावल दस्ते में चुण्ड़ावतों के साथ अग्रिम पंक्ति में हकीम खाँ सूर भी थे। मुगल सेना पर सर्वप्रथम आक्रमण इन्होंने किया, जिससे मुगल सेना पूर्ण रूप से

हल्दीघाटी का युद्ध

www.rajteachers.com

अस्त–व्यस्त हो गई। रही कसर प्रताप के आक्रमण ने पूरी कर दी। मुगल इतिहासकार बदायूँनी स्वीकार करता है कि मेवाड़ी सेना के आक्रमण का वेग इतना तीव्र था कि मुगल सैनिकों ने बनास के दूसरे किनारे से पाँच–छह कोस तक (10–15 कि.मी.) भागकर अपनी जान बचाई।

अब प्रताप ने अपने चेतक घोड़े को छलाँग लगवाकर हाथी पर सवार मानसिंह पर अपने भाले से वार किया, पर मानसिंह बच गया। उसका हाथी मान सिंह को लेकर भाग गया। इस घटना में चेतक का पिछला पैर हाथी की सूँड़ में लगी तलवार से जख्मी हो गया। प्रताप को शत्रु सेना ने घेर लिया। लेकिन प्रताप ने संतुलन बनाए रखा तथा अपनी शक्ति का अभूतपूर्व प्रदर्शन करते हुए मुगल सेना में उपस्थित बलिष्ठ पठान बहलोल खाँ के वार का ऐसा प्रतिकार किया कि खान के जिरह बख्तर सहित उसके घोड़े के भी दो फाड़ हो गए। इस दृश्य को देखकर मुगल सेना में हड़कम्प मच गया। अब प्रताप ने युद्ध को मैदान के बजाय पहाड़ों में मोड़ने का प्रयास किया। उनकी सेना के दोनों भाग एकत्र होकर पहाड़ों की ओर मुड़े और अपने गंतव्य स्थान पर पहुँचे। तब तक मुगल सेना को रोके रखने का उत्तरदायित्व झाला मान को सौंपा। झाला मान ने अपना जीवन उत्सर्ग करके भी अपने कर्तव्य का पालन किया। इस युद्ध में मुगल सैनिकों का मनोबल इतना टूट चुका था कि उसमें प्रताप की सेना का पीछा करने का साहस नहीं रहा।

युद्ध का परिणाम

मेवाड़ की इस विजय ने और प्रताप के नेतृत्व ने जनमानस का विश्वास दृढ़ किया। इस युद्ध ने मुगलों के अजेय होने के भ्रम को तोड़ दिया। अब प्रताप वीर शिरोमणि के रूप में स्थापित हो गए। भारत में पहली बार मुगल सेना को करारी हार का सामना करना पड़ा। मुगल सेना को प्रताप का भय निरन्तर सताता रहा, इसलिए हल्दी घाटी से गोगुन्दा पहुँचने पर भी वह इस भय से उबर न सकी। प्रताप के एकाएक आक्रमणों के भय से मुगल लश्कर ने गोगुन्दा में अपने क्षेत्र के इर्द–गिर्द ईंटों से इतनी बड़ी दीवार का निर्माण कराया कि प्रताप के घुड़सवार भी कूदकर अन्दर न आ सकें। गोगुन्दा में मुगल सेना की हालात बन्दी जैसी हो गई थी। भीलू राणा पूंजा के नेतृत्व में प्रताप के सैनिकों ने गोगुन्दा की इतनी दृढ़ नाकेबन्दी कर दी कि बाहर से किसी प्रकार की खाद्य व अन्य सामग्री मुगल छावनियों में नहीं पहुँच सकी। इस कारण मुगल सैनिकों एवं जानवरों के भूखे मरने की नौबत आने लगी। निराश होकर मुगल सेना गोगून्दा खाली कर अकबर के दरबार में लौट गई। हल्दीघाटी की पराजय से त्रस्त होकर अकबर ने मानसिंह व आसफ खाँ के मुगल दरबार में उपस्थित होने पर रोक लगा दी थी। शाही सेना के जाने के बाद प्रताप फिर कुम्भलगढ़ लौट आए।

हल्दीघाटी के युद्ध के बाद अगले पाँच वर्ष तक प्रताप छापामार युद्ध प्रणाली से मुगलों को छकाते रहे। अकबर ने तीन बार शाहबाज खाँ को प्रताप के विरूद्ध भेजा, किन्तु उसे असफल होकर लौटना पड़ा। मुगलों को असहाय अवस्था में पाकर प्रताप ने प्रतिरक्षात्मक की अपेक्षा आक्रामक नीति अपनाई। उन्होंने इसका पहला प्रयोग दिवेर में किया। अक्टूबर 1582 ई. में प्रताप ने अपने सैनिकों के साथ मुगलों के प्रमुख थाने 'दिवेर' (राजसमंद) को घेर लिया। मुगल सेनानायक सुल्तान खाँ को जैसे ही

www.rajteachers.com

इस घेरे की खबर लगी, उसने आस–पास के 17 थानों के थानेदारों को बुला लिया। दिवेर थाने के पास दोनों सेनाएँ आमने–सामने हुई। सुल्तान खाँ हाथी पर सवार था और महाराणा प्रताप के साथ युवराज अमर सिंह सहित अनेक सरदार व भील सैनिक थे। प्रताप ने सुल्तान खाँ के हाथी को मार डाला तो वह भाग गया और घोड़े पर सवार होकर पुनः युद्ध भूमि में आया। अमरसिंह तलवार लेकर सुल्तान खाँ की तरफ लपके और तलवार का वार किया। सुल्तान खाँ ने तलवार के वार से बचने की कोशिश की तो अमरसिंह ने अपने भाले से उसे बींध डाला। इससे मुगल सेना वहाँ ठहर नहीं सकी। दिवेर युद्ध में भी प्रताप की निर्णायक जीत हुई। इसके बाद प्रताप कुम्भलगढ़ की तरफ बढ़े तथा कुम्भलगढ़ सहित आस–पास के सभी मुगल थानों पर अधिकार कर लिया। अगले दो वर्षों तक अकबर ने मेवाड़ में सैनिक अभियान जारी रखे, किन्तु उनमें असफलता के कारण सन् 1584 ई. के पश्चात् तो अकबर का प्रताप के विरूद्ध सेना भेजने का साहस ही नहीं रहा। अब प्रताप ने चावण्ड को अपनी नई राजधानी बनाई और आक्रामक नीति अपनाकर एक–एक कर अपने पिता के काल में अकबर के हाथों गए स्थानों को पुनः विजित कर लिया। 19 जनवरी, 1597 ई. को 57 वर्ष की अवस्था में चावण्ड में स्वाधीनता के इस महान् पुजारी ने अन्तिम सांस ली। चावण्ड़ में आज भी महाराणा प्रताप के महलों और भामाशाह के हवेली के खण्ड़हर देखे जा सकते हैं। चावण्ड के निकट बाडोली गाँव में प्रताप की समाधि बनी हुई है।

प्रताप महान् का व्यक्तित्व

महाराणा प्रताप श्रेष्ठ योद्धा और सच्चे जननायक थे। सभी धर्मों के लोग मातृभूमि के स्वाधीनता संघर्ष में प्रताप के साथ थे। प्रताप ने अपने व्यक्तित्व से मेवाड़ के प्रत्येक व्यक्ति को मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए सब कुछ न्यौछावर कर देने वाला योद्धा बना दिया। इससे महाराणा प्रताप जनमानस के लिए प्रातः स्मरणीय बन गए। अपने देश की स्वतन्त्रता और सार्वभौमिकता के लिए सतत् संघर्ष और उनका विविध क्षेत्र में योगदान उन्हें महान् सिद्ध करता है। युद्धों में दिवंगत वीरों के उत्तराधिकारियों को प्रताप ने पिता की तरह स्नेह दिया और उनके पुनर्वास के लिए अपूर्व प्रयास कर मानवाधिकारों के संरक्षण का आदर्श स्थापित किया। नारी सुरक्षा और संरक्षण के लिए प्रताप ने कई प्रयास किए। उनके प्रयासों की बदौलत मेवाड़ को भविष्य में जौहर जैसी त्रासदी नहीं झेलनी पड़ी। प्रताप ने कैद की गई मुगल स्त्रियों को सुरक्षित लौटाकर नारी सम्मान का पाठ पढ़ाया। अकाल–दर–अकाल जूझने वाली प्रजा और शासकों के लिए जल बचत और कम खर्च में जलाशय बनाने की तकनीक दी। यही नहीं पर्यावरण सुरक्षा को प्रत्येक शासक और नागरिक के कर्तव्य के रूप में परिभाषित किया। प्रताप का यह योगदान उनकी वैश्विक दृष्टि का परिचायक है। इसी ध्येय से प्रताप ने 'विश्ववल्लभ' (जो संसार को प्रिय हो) नाम से वृक्ष–आयुर्विज्ञान ग्रंथ की रचना करवाई। संस्कारी जीवन ही सबको अपेक्षित होता है, प्रताप ने इस उद्देश्य से 'व्यवहार आर्दश' जैसा ग्रंथ लिखवाया। विद्वानों और दूरदर्शी लोगों को संरक्षण दिया। इनमें संस्कृत विद्ववान पंडित चक्रपाणी मिश्र प्रमुख थे। प्रताप के संरक्षण में लिखी गई 'राज्याभिषेक पद्धति' भारतीय शासकों के लिए आदर्श बनी। मेवाड़ और गुजरात के शासकों सहित मराठा शासक भी अपना अभिषेक इसी पद्धति से करवाने लगे।

www.rajteachers.com

चावण्ड रागमाला का चित्र

चावण्ड रागमाला का चित्र

महाराणा प्रताप ने संगीत, मूर्तिकला और चित्रकला को संरक्षण दिया। अपने दरबार में निसारूद्दीन जैसे चित्रकार से छह राग और छत्तीस रागिनियों के ध्यान चित्र बनवाकर चावण्ड़ चित्र शैली को जन्म दिया। रागमाला शृंखला के ये चित्र अन्य कई क्षेत्रों के चित्रकारों के लिए अनुकरणीय बने। यह कला भारतीय चित्रकला की निधि हैं। प्रताप ने देश की समृद्धि को बनाए रखने के लिए धातुओं की खदानों की सुरक्षा की ओर प्रमुखता से ध्यान दिया। सभी धर्मों का आदर प्रताप के व्यक्तित्व की निराली विशेषता थी। जनजाति के मुखियाओं ने प्रताप के नेतृत्व में अपूर्व विश्वास किया। उदयपुर के निकट हरिहर जैसे मन्दिर उनके काल में शैव और वैष्णव धर्म की एकता को दर्शाता है।

इस प्रकार राष्ट्रप्रेम, सर्वधर्म सद्भाव, सहिष्णुता, करूणा, स्वाधीनता के लिए युद्ध, नीतिगत आदर्शों की पालना, मानवाधिकारों की सुरक्षा, नारी सम्मान, पर्यावरण और जल संरक्षण एवं सर्वसामान्य को आदर जैसे मूल्य तथा साहित्य व संस्कृति के प्रति सम्मान उनकी महानता के उज्ज्वल परिचायक हैं। महाराणा प्रताप की समाधि जन–जन को इस विराट चरित्र नायक के कीर्तिमय जीवन और आदर्शों की प्रेरणा देती रहेगी। प्रताप के बारे में कहा गया है कि–

पग–पग भम्या पहाड़, धरा छोड़ राख्यो धरम।
महाराणा मेवाड़, हिरदे बसया हिन्द रे।।

स्वाभिमानी अमरसिंह राठौड़

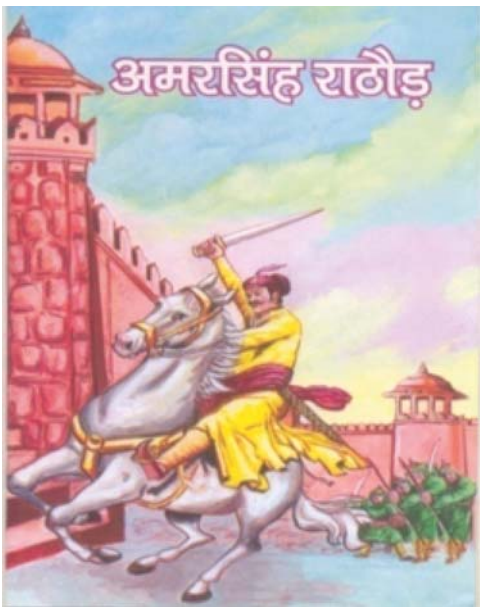

राजस्थान के एक अन्य सपूत जिसने मुगल शासक शाहजहाँ को उसके दरबार में जाकर चुनौती दी थी, वह अमरसिंह राठौड़ राजस्थान में शौर्य, स्वाभिमान एवं त्याग का प्रतीक माना जाता है। उसका जन्म 12 दिसम्बर 1613 ई. में हुआ था। वह जोधपुर के शासक गजसिंह का ज्येष्ठ पुत्र था। उसकी शिक्षा–दीक्षा उत्तराधिकारी राजकुमार के रूप में हुई थी। वह कुशाग्र बुद्धि, चंचल स्वभाव एवं स्वाभिमान से परिपूर्ण था। अतः अमरसिंह की कीर्ति चारों ओर फैल गई। उसको महाराजा गजसिंह का स्वाभाविक उत्तराधिकारी माना जाता था। किन्तु गजसिंह की उप पत्नी अनारा के षड्यंत्र के कारण अमरसिंह को

www.rajteachers.com

राजगद्दी न देकर कनिष्ठ पुत्र जसवंतसिंह को मारवाड़ का शासक बना दिया गया। मुगल शासक शाहजहाँ ने जसवन्तसिंह को मारवाड़ के शासक की मान्यता दे दी। अमरसिंह ने इस निर्णय का प्रतिकार नहीं किया। पिता के समय में ही अमरसिंह मुगल बादशाह की सेवा में आ गया था। इस घटना के बाद शाहजहाँ ने अमरसिंह को उच्च मनसब, राव की पद्वी और नागौर का परगना दिया। अमरसिंह नागौर की प्रशासनिक व्यवस्था को सुदृढ़कर पुनः शाहजहाँ के दरबार में चला गया।

अमरसिंह की सूझ–बूझ और योग्यता से शाहजहाँ परिचित था। अतः अनेक कठिन अभियानों में वह अमरसिंह को भेजता रहता था। उसे जूझारसिंह बुन्देला, राजा जगतसिंह (कांगड़ा), ईरान के शाह सफी, शाह भौंसले के विरुद्ध और कंधार के अभियानों पर भेजा गया। अमरसिंह स्वयं स्वाभिमानी था तथा स्वाभिमानी व्यक्तियों का विशेष ध्यान रखता था। केसरीसिंह जोधा को बादशाह की आज्ञा के कारण अटक पार जाना था, किन्तु जब आदेश पालना में हिचकिचाहट बताई तो उसका मनसब जप्त कर लिया। इसकी सूचना जब अमरसिंह को हुई तो वह केसरीसिंह से मिलने पहुँचा और बादशाह की नाराजगी की परवाह किये बगैर उसने 30 हजार का पट्टा तथा नागौर की सुरक्षा का उत्तरदायित्व उसको सौंपा। इस प्रकार जोधा के सम्मान की रक्षा की। अपने स्वाभिमान पर भी अमरसिंह ने कभी आँच नहीं आने दी। कतिपय घटनाओं के कारण अमरसिंह ने मुगल कोष में जमा कराए जाने वाले कर को स्पष्ट रूप से देने से इन्कार कर दिया। राज्य की ओर से बार–बार मांग होने पर भी उसने अपने निश्चय में कोई परिवर्तन नहीं किया। अमरसिंह विरोधी मनसबदारों को उसके विरूद्ध बादशाह के कान भरने का अच्छा अवसर मिला। इसमें सलावत खां मुख्य था। इसका प्रभाव बादशाह पर भी पड़ा। उसने एक दिन अमर सिंह को कटु वचन सुनाये। अमरसिंह का स्वाभिमान जाग उठा और क्रोध से उसके नेत्र लाल हो गये। वह बादशाह की ओर बढ़ा। जब सलावत खाँ ने अपशब्द कहते हुए उसे आगे बढ़ने से रोकने के प्रयास किया तो उसे अमरसिंह के हाथों मौत का शिकार होना पड़ा। भयग्रस्त बादशाह भागकर अपनी जान बचा पाया। मुगल दरबार में अमरसिंह जब अकेला था, मुगल मनसबदार द्वारा धोखे से मार दिया गया। इस घटना में अमरसिंह की भले ही मृत्यु हो गई किन्तु आदर्शों के प्रति उसका समर्पण आज भी हमें प्रेरणा देता है। रचनाधर्मियों ने उसके स्वाभिमान और त्याग से आकर्षित होकर अनेक प्रेरणादायक काव्यों की रचना की।

वीर दुर्गादास राठौड़

राजस्थान को गर्वित करने वाला अन्य व्यक्तित्व वीर दुर्गादास राठौड़ है। उसका जन्म 13 अगस्त, 1638 ई. में मारवाड़ के सालवां गाँव में हुआ था। उसका पिता आसकरण मारवाड़ के महाराजा जसवंत सिंह का मंत्री था। दुर्गादास की माता ने उसमें देश तथा मातृभूमि के प्रति भक्ति की भावना भर दी थी। 28 नवंबर, 1678 ई. को महाराजा जसवंत सिंह की जमरूद में मृत्यु हो गई। उस समय उनका कोई पुत्र जीवित नहीं था, लेकिन उनकी दो रानियाँ गर्भवती थी। उन्हें दुर्गादास तथा अन्य सरदार अपने साथ लेकर लाहोर के लिए चल पड़े। लाहोर पहुँचने पर दोनों रानियों ने दो पुत्रों को जन्म दिया। एक की कुछ समय बाद मृत्यु हो गई तथा दूसरा जो जीवित बचा उसका नाम अजीत सिंह रखा। मारवाड़ के

www.rajteachers.com

सरदारों को विश्वास था कि औरंगजेब अजीत सिंह को जसवंत सिंह का उत्तराधिकारी स्वीकार कर लेगा, किन्तु उनकी आशा शीघ्र ही ध्वस्त हो गई। औरंगजेब ने रानियों सहित मारवाड़ के दल को दिल्ली पहुँचने का आदेश भिजवा दिया। यही नहीं औरंगजेब ने मारवाड़ राज्य को खालसा किए जाने का आदेश देकर मुगल अधिकारी को नियुक्त कर दिया।

वीर दुर्गादास राठौड़

अजीत सिंह की रक्षा

दुर्गादास राठौड़ सरदारों के दल के साथ अजीतसिंह को लेकर राजधानी दिल्ली पहुँचा और औरंगजेब से अजीतसिंह को मारवाड़ राज्य देने का आग्रह किया। औरंगजेब ने इस्लाम स्वीकार कर लेने की शर्त पर ही उसे मारवाड़ का राज्य देने की बात कही। दुर्गादास तथा राठौड़ सरदार इस अपमानजनक शर्त को मानने के लिए तैयार नहीं थे। अजीत सिंह को दिल्ली में रखना भी उसकी सुरक्षा के लिए खतरा था। अतः शीघ्र ही उसे औरंगजेब के चंगुल से निकालना आवश्यक था। दुर्गादास अजीतसिंह को जिस दूरदर्शिता से औरंगजेब के चंगुल से बचाकर मारवाड़ लाया वह एक चमत्कार से कम नहीं था। उसने पीछा करती हुए मुगल सेना का भी सामना किया।

राठौड़–मुगल संघर्ष

शेष बचे राठौड़ तथा दुर्गादास सुरक्षित मारवाड़ के सालावास गाँव पहुँचे, जहाँ से दुर्गादास ने अजीतसिंह को सिरोही भेजा। सिरोही के महाराव वैरीसाल सिंह की देख–रेख में कालन्द्री गाँव के ब्राह्मण जयदेव की पत्नी ने उन्हें पाला। अजीतसिंह के मारवाड़ आने की सूचना पाकर राठौड़ दुर्गादास के नेतृत्व में संगठित होने लगे। उन्होंने मुगल फौजदार को जोधपुर से खदेड़कर नगर पर अधिकार कर लिया। औरंगजेब ने जोधपुर पर पुनः अधिकार हेतु विशाल सेना भेजी तथा स्वयं अजमेर में आ गया। राठौड़ों ने अब छापामार पद्धति से मुगलों को छकाना शुरू कर दिया। मेवाड़ से सहयोग प्राप्त करना दुर्गादास का एक महत्वपूर्ण कार्य था।

राठौड़–सिसोदिया गठबंधन

दुर्गादास ने संघर्ष बढ़ता देखकर मेवाड़ के महाराणा राजसिंह से अजीतसिंह को आश्रय देने की प्रार्थना की। महाराणा ने इसे स्वीकार कर लिया। यही नहीं महाराणा ने राठौड़ों को पूर्ण सहायता का आश्वासन भी दिया। उधर मारवाड़ में राठौड़ों ने मुगलों का कड़ा प्रतिरोध किया। औरंगजेब ने शहजादे अकबर को मारवाड़ में भेजा, किन्तु वह भी राठौड़ों को नियन्त्रित करने में पूर्णतः असफल रहा। इसके विपरीत दुर्गादास ने शहजादे अकबर को उसके पिता औरंगजेब के विरूद्ध उकसा दिया। अकबर का औरंगजेब के विरूद्ध विद्रोह करवा देना दुर्गादास की महान् सफलता थी। दुर्गादास राठौड़ के प्रयासों से

www.rajteachers.com

मारवाड़ और मेवाड़ के मध्य राठौड़–सिसोदिया गठबंधन हुआ। यह दुर्गादास राठौड़ का दूसरा महान् कार्य था। बालक अजीतसिंह को मेवाड़ में आश्रय देने और औरंगजेब की नीतियों का विरोध करने का संकल्प महाराणा राज सिंह ने स्वीकार कर लिया। राजसिंह ने औरंगजेब को एक और करारा झटका उस समय दिया जब औरंगजेब किशनगढ़ की राजकुमारी चारूमति से विवाह करना चाहता था, जिसके लिए चारूमति तैयार नहीं थी। चारूमति के आग्रह करने पर राजसिंह ने उससे विवाह किया। राजसिंह ने औरंगजेब की मन्दिर विध्वंस नीति का प्रतिरोध करते हुए द्वारकाधीश और श्रीनाथ जी को मेवाड़ में स्थापित किया। औरंगजेब ने 1679 ई. में जजिया कर पुनः लगाया तो राजसिंह ने इसके विरोध में उसको पत्र लिखा। औरंगजेब ने शहजादा अकबर के माध्यम से अपने विरूद्ध बने राठौड़–सिसोदिया गठबंधन को तोड़ने का प्रयास किया। वस्तुतः मेवाड़ के महाराणा राजसिंह व दुर्गादास के संयुक्त प्रयासों से उत्तर भारत में औरंगजेब के दमनकारी और कुटनीतिक प्रयासों का विरोध हुआ। इस कारण 1680 ई. में देबारी में मेवाड़ और औरंगजेब की सेना में युद्ध हुआ। दुर्गादास मराठों की सहायता लेने दक्षिण में गया तो शहजादा अकबर भी उसके साथ था। यह औरंगजेब के लिए एक बड़ी चुनौती थी। इसी दौरान महाराणा राजसिंह की मृत्यु से उसको राहत मिली। नए महाराणा से समझौता कर वह दक्षिण की ओर चल पड़ा।

दुर्गादास का मराठा सहयोग प्राप्त करना उसकी एक बड़ी कुटनीतिक विजय थी। मराठा–शक्ति की सक्रियता के कारण औरंगजेब को उत्तरी भारत से भागकर दक्षिण की ओर जाना पड़ा। इससे मारवाड़ पर मुगल सैनिक दबाव कम हो गया। औरंगजेब दक्षिण में इतना घिर गया कि वह पुनः जीवित उत्तर भारत में न आ सका। औरंगजेब की मृत्यु का समाचार मिलते ही अजीतसिंह ने पुनः मारवाड़ पर अधिकार कर लिया। यह सूचना पाकर दुर्गादास भी मारवाड़ लौट आया, किन्तु इस बार उसे अजीतसिंह से उत्साहवर्धक स्वागत नहीं मिला। दुर्गादास की अनुपस्थिति में मारवाड़ के सरदारों द्वारा उनके खिलाफ किए गए षड़यंत्रों के कारण दुर्गादास जैसे देशभक्त, दूरदर्शी और महान् कूटनीतिज्ञ को मारवाड़ छोड़ कर मेवाड़ आना पड़ा। मेवाड़ ने उनको आश्रय ही नहीं दिया, अपितु सम्मानपूर्वक रामपुरा की जागीर देकर वहाँ का प्रशासक भी नियुक्त कर दिया।

दुर्गादास जीवन के अन्तिम वर्षों में उज्जैन (मध्यप्रदेश) में ही रहे। वहीं 22 नवंबर, 1718 को

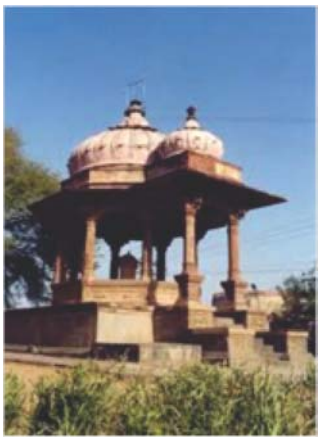

दुर्गादास की छतरी

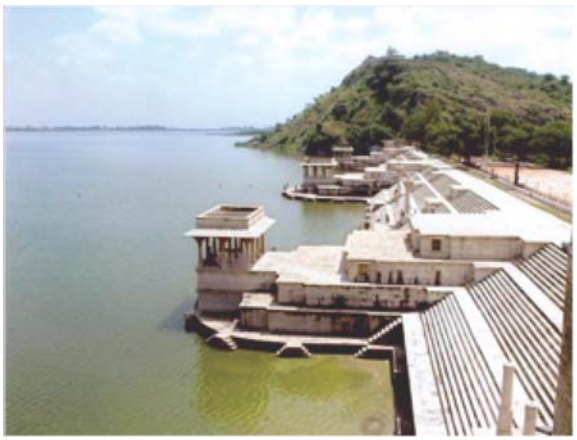

महाराणा राजसिंह द्वारा निर्मित नौ–चौकी राजसमंद

www.rajteachers.com

उनका देहांत हो गया। उज्जैन में क्षिप्रा नदी के पूर्वी किनारे पर लाल पत्थर की छतरी स्वामिभक्त सपूत के स्मारक के रूप में मौजूद है।

गतिविधि–

मेवाड़ के महाराणा राजसिंह के जीवन चरित्र एवं उनके द्वारा निर्मित नौ–चौकी पर जानकारी संकलित कीजिए।

महाराजा सूरजमल

महाराजा सूरजमल भरतपुर के लोकप्रिय शासक थे। उसके पिता बदनसिंह ने डीग बसाकर इसे अपनी राजधानी बनाया। सूरजमल ने भरतपुर शहर की स्थापना की। सूरजमल से पूर्व जाट नेता गोकुल औरंगजेब की मन्दिर–मूर्ति विध्वंस नीति का प्रबल विरोधी रहे। मथुरा और आगरा के जाट बहुत समय तक मुगलों के अत्याचार और कुशासन का शिकार रहे। गोकुल राजाराम ने मुगलों के अत्याचारों का प्रबल विरोध किया तथा सिकन्दरा में स्थित अकबर के मकबरे से बहुमूल्य रत्नों व सोने–चांदी के पत्थरों को उखाड़ लिया। राजाराम के बाद चूड़ामन ने आजीवन मुगलों से संघर्ष किया।

महाराजा सूरजमल

जयपुर के महाराजा जयसिंह की मृत्यु के बाद हुए उत्तराधिकार युद्ध में सूरजमल के सहयोग से ईश्वरी सिंह विजयी हुआ और जयपुर की गद्दी पर बैठा। मई 1753 ई. में सूरजमल ने फिरोजशाह कोटला पर कब्जा कर लिया। मराठों ने जनवरी 1754 ई. से मई 1754 ई. तक भरतपुर के कुम्हेर के किले को घेरे रखा, पर वे इस किले को नहीं जीत पाए और उन्हें संधि करनी पड़ी। 1761 ई. में पानीपत की तीसरी लड़ाई में अहमद शाह अब्दाली के हाथों हार के बाद शेष बचे मराठा सैनिकों के खाने–पीने, इलाज व कपड़ों की व्यवस्था महाराजा सूरजमल ने की।

सूरजमल ने अपने प्रभुत्व वाले क्षेत्रों में किले व महल बनवाए, जिनमें प्रसिद्ध लोहागढ़ किला भी शामिल है। मराठों के पतन के बाद सूरजमल ने गाजियाबाद, रोहतक, झज्जर, आगरा, धौलपुर, मैनपुरी, हाथरस, बनारस, फर्रूखनगर इत्यादि इलाके जीत लिए। 25 दिसम्बर, 1763 ई. को महाराजा सूरजमल की मृत्यु हो गई।

www.rajteachers.com

शब्दावली

हरावल	–	सेना का अग्रिम भाग
चंदावल	–	सेना का पीछेवाला भाग
छापामार युद्ध	–	अचानक आक्रमण कर भाग जाने वाली युद्ध की एक विधा
प्रतिरक्षात्मक	–	सुरक्षात्मक
खालसा	–	केन्द्रीय अधिकार क्षेत्र

अभ्यास प्रश्न

प्रश्न एक व दो के सही उत्तर कोष्ठक में लिखिए–

1. महाराणा प्रताप के घोड़े का नाम था–
   (अ) लीलण (ब) चेतक (स) केसर (द) ऐटक ( )
2. सेना का हरावल दस्ता होता है–
   (अ) सेना का अग्रिम भाग (ब) सेना के मध्य का भाग
   (स) सेना के पीछे का भाग (द) सम्पूर्ण सेना ( )
3. महाराणा प्रताप के व्यक्तित्व की विशेषताएँ बताइए ।
4. विक्रमादित्य के नाम से दिल्ली की गद्दी पर बैठने वाला राजा कौन था ?
5. महाराजा सूरजमल ने राजस्थान के किस शहर की स्थापना की थी ?
6. दुर्गादास राठौड़ का अन्तिम समय कहाँ व्यतीत हुआ ?
7. महाराणा प्रताप को अधीन करने के लिए अकबर के कूटनीतिक प्रयासों का उल्लेख कीजिए।
8. दुर्गादास राठौड़ ने किस प्रकार मारवाड़ के उत्तराधिकारी अजीतसिंह की रक्षा की?
9. हल्दी घाटी के युद्ध पर निबन्ध लिखिए।
10. अमरसिंह राठौड़ का चरित्र चित्रण कीजिए।

गतिविधि–

1. राजस्थान के विभिन्न ऐतिहासिक स्थलों एवं इमारतों के चित्र संकलित कर उनसे संबंधित ऐतिहासिक घटनाओं की जानकारी अपने विषयाध्यापक एवं अन्य व्यक्तियों के माध्यम से प्राप्त कीजिए।
2. महाराणा प्रताप के जीवन से सम्बन्धित प्रेरणादायी घटनाओं का विद्यालय में मंचन करें।

www.rajteachers.com

अध्याय 19

कला एवं स्थापत्य

पिछली कक्षा में आपने पढ़ा कि प्रारम्भिक मानव ने दीवारों पर लाल रंग से शिकार के चित्र बनाए। धीरे धीरे पक्के बर्तनों पर पशु–पक्षी अथवा मनुष्यों के चित्र बनाए। हम भी रंगों से दीवार, कागज, कपड़े आदि पर चित्र बनाते हैं। इन सबके बारे में हम इस अध्याय में पढेंगे।

यह वह समय था जब देश में चित्रकला और स्थापत्य कला ने बहुत प्रगति की, इसके अनेक नमूने आज भी हमारे सामने हैं और आज भी उस परम्परा को कलाकार आगे बढ़ा रहे हैं।

चित्र शैली से तात्पर्य चित्र बनाने के एक विशेष प्रकार के तरीके से है।

मध्ययुगीन चित्र शैली

मध्ययुगीन चित्रकला शैली के दो प्रधान केन्द्र रहे हैं। पहला पश्चिमी भारत का क्षेत्र व दूसरा उत्तरी–पूर्वी भारत का क्षेत्र। पश्चिमी भारत के क्षेत्र का केन्द्र गुजरात व राजस्थान बना। उत्तरी–पूर्वी शैली का केन्द्र बना बंगाल और बिहार। दोनों केन्द्रों के विषय जैन व बौद्ध कथाओं पर आधारित थे। इसे पाल शैली कहते है। इनके आकार–प्रकार व स्वरूप में साम्यता थी। यह चित्र ताड़ पत्र व कागज पर बनाए जाते थे। इन्हें पोथी चित्र भी कहा जाता था। इस शैली की पहचान है, गरुड़ की सी आगे निकली हुई नाक, पतली आँखें, छोटी ठुड्डी, ऐंठी अंगुलियाँ, पतली कमर इत्यादि।

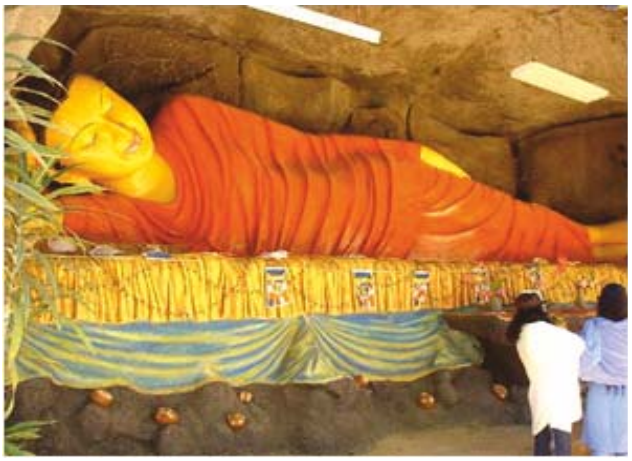

बुद्ध महापरिनिर्वाण–पाल शैली
(उत्तरी–पूर्वी भारत)

इन चित्रों में लाल, नीले व पीले रंगों का प्रयोग किया जाता था। इनकी रेखाओं की एक जैसी मोटाई होती थी। पश्चिमी भारतीय शैली से राजस्थानी चित्रकला की उत्पत्ति मानी जाती है।

सल्तनत कालीन स्थापत्य

दिल्ली में मुस्लिम सल्तनत की स्थापना के साथ ही नए स्थापत्य ने जन्म लिया। पश्चिम एशिया के प्रभाव से अब हिन्दुस्तान में भी मस्जिदें बनने लगी। शायद इस्लामिक शैली वाला देश का सबसे पहला भवन समूह दिल्ली के पास महरौली में बना। यहाँ कुव्वत–उल–इस्लाम मस्जिद के समीप ही दुनिया की मशहूर कुतुब मीनार है।

कुव्वत–उल इस्लाम और कुतुबमीनार

www.rajteachers.com

मुगल कालीन स्थापत्य

दिल्ली सल्तनत के बाद मुगल आए। मुगलों के पास बड़ी–बड़ी इमारतें बनाने के लिए अपार धन था। उन्होंने मस्जिदों के अलावा कई भव्य मकबरे भी बनाए। इन मकबरों में मध्य और पश्चिम एशिया की स्थापत्य कला का काफी असर था। दिल्ली में हुमायूँ का मकबरा और आगरा में ताजमहल मुगल स्थापत्य के अभूतपूर्व नमूने हैं।

हुमायूँ का मकबरा–दिल्ली

ताजमहल–आगरा

शाहजहाँ द्वारा निर्मित दिल्ली का लाल किला मुख्यतः रिहायशी किला था, सामरिक महत्त्व का नहीं। वहीं आगरा में बना लाल किला सामरिक महत्त्व का भी था। इस किले को यूनेस्को (UNESCO) ने 'वैश्विक विरासत' घोषित किया है।

दिल्ली के लाल किले को हिन्दुस्तान में राज्य सत्ता का द्योतक माना गया है। इसका उदाहरण तब मिलता है जब सुभाषचन्द्र बोस ने आजाद हिन्द फौज के सैनिकों को प्रेरित करते हुए लाल किले की प्राचीर पर तिरंगा फहराने की बात कही थी। आजाद हिन्द फौज के सेनानियों पर मुकदमा भी अंग्रेज सरकार ने लाल किले पर ही चलाया था। मुगल स्थापत्य ने राजस्थान में भी स्थापत्य कला पर असर डाला। अब राजस्थान की इमारतों में भी छज्जें, छतरी और झरोखे बनाए जाने लगे।

लाल किला–दिल्ली

राजस्थान की स्थापत्य कला

राजस्थानी स्थापत्य कला क्या थी? इसे समझने के लिए पहले कुछ पिछला याद करते हैं। मनुष्य को गुफाओं से निकल कर सुरक्षित आवास की आवश्यकता हुई तो उसने बाँस और घास–फूस से झोंपड़ी का निर्माण किया। निर्माण की इसी प्रक्रिया में पत्थरों व पक्की ईंटों का उपयोग करने लगा।

मनुष्य जब एक समूह में निवास करने लगा तो पशु–पालन और कृषि करना आरम्भ किया। आस–पास के जंगली जानवरों से रक्षा करने हेतु एक परकोटे का निर्माण किया।

भारत में सिंधु सभ्यता के उत्खनन से और राजस्थान में कालीबंगा (हनुमानगढ़) और आहाड़

www.rajteachers.com

सभ्यता के उत्खनन से सुनिश्चित आवास की एक नगरीय सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए हैं।

ऐसा माना जाता है कि सिंधु–सरस्वती सभ्यता से ही ईंटों के भवन बनाने की परम्परा आरम्भ हुई थी, जिसका निरंतर विकास होता रहा। मौर्य युग में लकड़ी से निर्मित भवनों व राजमहलों के निर्माण का विवरण मिलता है। पाटलिपुत्र के भव्य महलों का उल्लेख यूनानी दूत मेगस्थनीज ने भी किया है।

इमारतों का इस्तेमाल सुरक्षा के लिए तो होता ही है, इनका इस्तेमाल सांकेतिक तौर पर लोगों के साथ संवाद करने के लिए भी होता है। तभी तो अनेक इमारतें इतनी खूबसूरत और महंगी भी बनाई जाती थी ताकि यह जाहिर हो सके कि इमारत में रहने वाला तथा उसे बनवाने वाला कितना महान् व्यक्ति था।

समय के साथ–साथ स्थापत्य के स्वरूप में भी परिवर्तन आया, जिन्हें हम निम्न रूप में देख सकते हैं–

(1) नगरीय स्थापत्य (2) दुर्ग निर्माण (3) स्तूप
(4) मंदिर (5) पुर अथवा नगर (6) ग्रामीण स्थापत्य

राजस्थान के दुर्ग

दुर्ग से अर्थ – वह क्षेत्र अथवा स्थान जिसके चारों ओर प्राचीर या परकोटा बना हो। अधिकांश दुर्ग सामरिक दृष्टि से और सुरक्षा के लिए बनाए जाते थे। सुरक्षा की दृष्टि से दुर्ग ऊँची पहाड़ियों पर, गहरी नदियों के किनारे अथवा मैदानी क्षेत्रों में बनाए जाते थे।

जहाँ तक संभव हो, दुर्ग के आसपास एक या अनेक गहरी खाइयाँ भी बनाई जाती थी, जिनमें पानी भर कर दुश्मन को रोका जा सकता था। मुख्यतः महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश और राजस्थान जैसे पर्वतीय क्षेत्रों में सामरिक दृष्टि से दुर्ग बनाने की प्राचीन परम्परा दिखाई देती है।

राजस्थान में स्थित प्रमुख दुर्गों की एक सूची– (कोष्ठक में जिले दिखाए गए हैं)

चित्तौड़गढ़ (चित्तौड़)	मेहरानगढ़ (जोधपुर)
कुम्भलगढ़ (राजसमन्द)	सोनारगढ़ (जैसलमेर)
जालोर–दुर्ग (जालोर)	गागरोन (झालावाड़)
रणथम्भौर (सवाई माधोपुर)	जूनागढ़ (बीकानेर)
तारागढ (बून्दी)	आमेर (जयपुर) इत्यादि।

गतिविधि–

राजस्थान में इनके अलावा और भी दुर्ग हैं, उनके बारे में जानकारी इकट्ठी करके लिखिए। चित्रों का संग्रह कीजिए।

ये दुर्ग न केवल सामरिक दृष्टि से वरन् शासकों के आवास, सेना और सामान्य लोगों के रहने के लिए भी उपयुक्त थे। इसमें खाद्य भण्डारण, कुँड, जलाशय आदि आवश्यक सुविधाएँ होती थी। दुर्ग में इतनी व्यवस्था होती थी कि कई महीने बिना परेशानी, बिना किसी समस्या के दुर्ग के अंदर लोग जब तक रह सकते थे, जब तक कि सेना दुश्मन को न हरा दे।

www.rajteachers.com

मैदानी क्षेत्रों में निर्मित दुर्गों की संरचना अलग ढंग की होती थी। मैदानी दुर्गों में भी पूर्ववत् विशेषताएँ तो रहती थीं, किन्तु ऐसे दुर्गों के चारों ओर चौड़ी खाइयाँ बनाई जाती थी, जिन्हें नदी अथवा तालाब से जोड़ा जाता था। इनमें संकड़े मार्ग भी बने होते थे। 'दुर्ग' शब्द के पर्याय में किला, गढ़ इत्यादि शब्दों का प्रयोग इतिहासकारों ने किया है, किन्तु राजस्थान के इतिहास में लोक भाषा में 'दुर्ग' के प्रर्याय रूप में 'किला' शब्द ही प्रयोग में लिया जाता रहा है। जैसे चित्तौड़ का किला, रणथम्भौर का किला, जालोर का किला, आमेर (जयपुर) का किला इत्यादि।

तारागढ़–अरावली पहाड़ी के उत्तर भाग में हाड़ा शासकों के कलात्मक महल बने हुए हैं। इन महलों को तारागढ़ दुर्ग के नाम से जाना जाता है। इस दुर्ग का निर्माण 1354 ई. में राव बरसिंह ने करवाया था। दुर्ग के चारों ओर दृढ़ दीवार का निर्माण किया गया है। बूंदी दुर्ग का स्थापत्य राजपूत व मुगल कला के समन्वय का सुन्दर उदाहरण है।

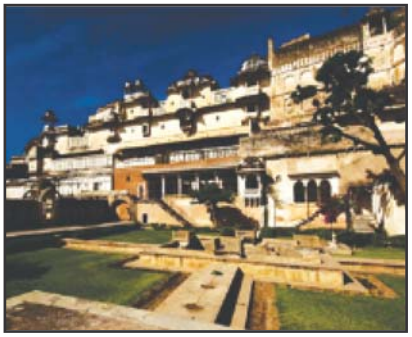
बून्दी दुर्ग

चित्रशाला–बून्दी

दुर्ग के छत्रशाल महल तथा यंत्रशाला को सुन्दर भित्ति चित्रों से सजाया गया है, वहीं बादल महल व अनिरुद्ध महल की चित्रशाला में चित्रित भिति चित्र राजस्थान की भिति चित्र परम्परा के सुन्दर उदाहरण है। भवनों की शानदार छतरियाँ व दरबार हॉल के अलंकृत स्तंभ स्थापत्य कला के अद्भुत उदाहरण है। बूंदी दुर्ग को समय–समय पर दिल्ली सल्तनत व मुगल बादशाहों द्वारा आक्रमण कर इसे क्षति पहुँचाई गई, किन्तु हाड़ा राजाओं ने हमेशा कड़ा प्रतिरोध कर इसकी रक्षा की।

रणथम्भौर–शिव पिंड पर रखे बिल्वपत्र की भाँति पहाड़ी श्रृंखलाओं में खोया हुआ रणथम्भौर देश का प्रसिद्ध दुर्ग है। यह दुर्ग उस अन्तर्यामी शिव की तरह है जो सब कुछ देखता है, पर स्वयं दिखाई नहीं पड़ता है। ऐसा अभेद्य और दुर्गम दुर्ग कदाचित् देश में दूसरा नहीं है।

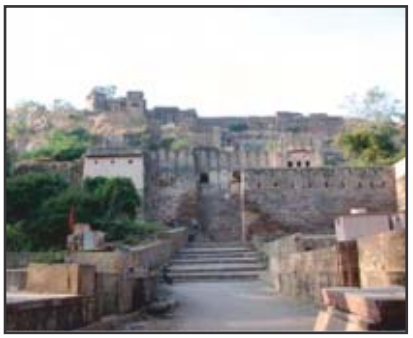
रणथम्भौर दुर्ग

एक ऊँची पहाड़ी के शिखर पर रणथम्भौर का अभेद्य दुर्ग स्थित है। दुर्ग का नाम 'रणथम्भ पुर' है। किले के निर्माण की निश्चित तिथि ज्ञात नहीं है, परन्तु ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि इस दुर्ग का निर्माण चौहान वंशी राजाओं ने करवाया, जिन्होंने 600 वर्षों तक इस क्षेत्र पर एकछत्र राज्य किया।

वर्तमान में यह दुर्ग व इसके आसपास का सघन वन क्षेत्र 'रणथम्भौर बाघ परियोजना' के अर्न्तगत आ गया, जिससे इसके जीर्णोद्धार व संरक्षण का कार्य प्रगति पर है।

www.rajteachers.com

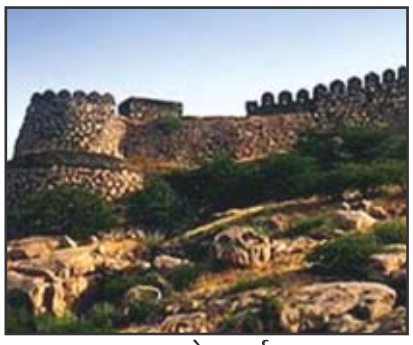
जालोर दुर्ग

जालोर दुर्ग–पश्चिम राजस्थान में सोनगरा चौहानों के अतुल शौर्य के लिए प्रसिद्ध 'जालोर दुर्ग' देश में अपनी प्राचीनता व सुदृढ़ता के लिए प्रसिद्ध है। वर्तमान गुजरात और राजस्थान सीमावर्ती पहाड़ी पर व्यापारिक सामरिक महत्व का क्षेत्र होने के कारण यह निरन्तर हमलावरों का केन्द्र रहा है।

पश्चिमी अरावली श्रृंखला की सोनगिरि पहाड़ी पर समुद्रतल से 2408 फीट की ऊँचाई पर प्रसिद्ध जालोर का दुर्ग अभिमान से खड़ा है। पहाड़ी के शीर्ष पर 800 गज लम्बा और 400 गज चौड़ा समतल मैदान है। तीन दरवाजों को पार कर चौथे मुख्य द्वार से प्रवेश किया जाता है। इस दुर्ग का निर्माण परमार राजाओं धारावर्ष और मुंज ने 10 वीं सदी में करवाया था। दुर्ग में कई हिन्दु व जैन देवालय तथा बुर्ज आदि बनाए गए हैं। दुर्ग पर मुस्लिम पीर मलिक शाह की मस्जिद है। दुर्ग में अतुलित जल भण्डार के कुएँ, कुँड आदि बनाए गए हैं।

जालोर दुर्ग पर लगभग 13 वीं सदी तक परमार राजाओं का अधिकार था। यह दुर्ग प्राचीरों के कुछ भाग को छोड़कर अब भी अच्छी स्थिति में है।

चित्तौड़ दुर्ग

चित्तौड़गढ़–मेवाड़ की राजनीति का केन्द्र चित्तौड़गढ़ उदयपुर दिल्ली मार्ग पर उदयपुर से 120 कि. मी उत्तर–पूर्व में स्थित है। इस किले का निर्माण मौर्य वंशी शासक चित्रांगद मौर्य द्वारा 7 वीं सदी में करवाया गया। तदनन्तर प्रतिहार, परमार और सिसोदिया शासकों द्वारा भी इसके निर्माण में अभिवृद्धि की गई।

चित्तौड़ का किला मेसा की पठार पर स्थित है जो एक सुदृढ़ प्राचीर से घिरा हुआ है। इसमें राजमहल, कलात्मक मंदिर, जलाशय आदि निर्मित हैं। मेवाड़ के महाराणा कुम्भा द्वारा गढ़ में कई स्थलों का जीर्णोद्धार करवाया गया। यहाँ अनेक भवन, मन्दिर, स्तम्भ आदि बनवाए, जो भारतीय स्थापत्य कला का सुन्दर उदाहरण है। महाराणा कुम्भा ने अपने राज्य काल में लगभग 32 नए किलों का निर्माण करवाया जो कि कुम्भा कालीन भारतीय स्थापत्य का अद्भुत उदाहरण हैं।

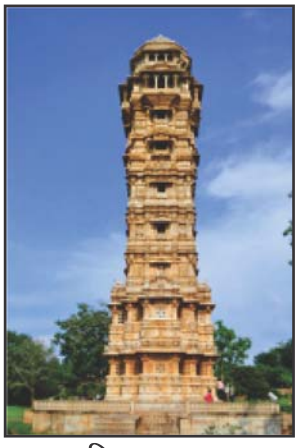
विजय स्तम्भ

विजय स्तम्भ– चित्तौड़गढ़ के अत्यन्त प्राचीन तीर्थ स्थल गौमुख कुण्ड के उत्तर–पूर्वी कोण पर कुम्भा द्वारा निर्मित 'विजय स्तंभ' 47 फीट वर्गाकार और 10 फीट ऊँची जगती (चबूतरा) पर बना हुआ है। यह 122 फीट ऊँचा नौ मंजिला स्मारक अपनी कारीगरी का सुन्दर उदाहरण है। इस स्तम्भ पर प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। इसे 'भारतीय मूर्तिकला का शब्दकोश' कहना उचित होगा।

www.rajteachers.com

पुराविद् श्री आर.सी. अग्रवाल ने विजय स्तंभ के शिल्पियों के नामों की सूची प्रकाशित की है। इनमें शिल्पी जइता तथा उसके पुत्रों नापा, पोमा, पूजा, भूमि, चुथी, बलराज आदि का वर्णन मिलता है। इस स्तंभ का निर्माण सन् 1440 में प्रारंभ होकर सन् 1448 में पूर्ण हुआ। राजस्थान में अन्य किलों यथा आमेर, बूंदी, बीकानेर, जोधपुर के किलों पर मुगल स्थापत्य कला का प्रभाव, बुर्ज, झरोखे, छतरियाँ, महराब आदि के रूप में दिखाई देता है।

स्थापत्यविद् पर्सी ब्राउन की मान्यता है कि मुस्लिम कारीगरों ने भारतीय स्थापत्य के पारम्परिक आकारों व स्थानीय रूपों को मिलाकर आवश्यकतानुरूप संशोधन कर एक विशिष्ट स्थापत्य शैली का निर्माण किया, जिसे 'इण्डो – इस्लामिक शैली' नाम दिया गया।

राजस्थान की चित्रकला

राजस्थान चित्र शैली के प्राचीन ऐसे सचित्र ग्रंथ सामने आए हैं जिसमें राजस्थानी चित्र शैली का आरंभिक स्वरूप निखरता दिखाई देता है।

इन ग्रंथ–चित्रों में 'लौरचन्द्रा', 'मृगावती', गीत गोविन्द,' चोर पंचाशिका', 'नायक नायिका भेद,' चावण्ड रागमाला आदि ग्रंथों में राजस्थानी शैली का परिष्कृत रूप निखरने लगा। रसिक प्रिया, रामायण, भागवत् पुराण चित्रों में यह मौलिक रूप में दिखाई देती है। चोर पंचाशिका व चावण्ड रागमाला ग्रंथों को कला इतिहासज्ञों ने राजस्थानी चित्रकला शैली के आरंभिक ग्रंथ चित्र माने हैं, जिसका समय लगभग 16 वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध माना गया है।

राजस्थान में चित्र निर्माण की प्रमुख शैलियां निम्न हैं–
1. मेवाड़ शैली – उदयपुर, नाथद्वारा, देवगढ, चावण्ड
2. मारवाड़ शैली – सिरोही, जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर
3. हाड़ौती शैली – बूंदी, कोटा, झालावाड़
4. ढूँढ़ाड़ शैली – जयपुर, अलवर, उनियारा, शेखावाटी
   किशनगढ़ शैली – अजमेर, किशनगढ़

बणी–ठणी (किशनगढ़)

भारत में मुगल साम्राज्य के पतन के साथ ही मुगल चित्रकार राजसी संरक्षण हेतु इधर–उधर राज्यों की ओर चले गए, जिससे मुगल काल की दरबारी चित्रकला शैली का प्रभाव कांगड़ा, राजस्थान, बंगाल, बिहार और तंजौर व गोलकुण्ड़ा की कला पर दिखाई देता है। मुगल चित्रकारों ने वहाँ जाकर स्थानीय कलाकारों और चित्र परम्परा के साथ काम कर एक नई शैली को जन्म दिया, जो स्थानीय विशेषताओं के कारण स्वतंत्र शैली के रूप में विकसित हुई। कुछ चित्रकार राजपूताना की रियासतों मेवाड़, मारवाड़, हाड़ौती, शेखावटी क्षेत्रों में गए जहाँ स्थानीय शासकों के संरक्षण में कार्य करते हुए उन्होंने आकारों की मौलिकता को बनाए रखा। परिणामस्वरूप अलग–अलग क्षेत्रीय शैलियाँ विकसित हुईं, किन्तु चित्रों की सामान्य विशेषताएँ, रंग, विषय वस्तु आदि में परिवर्तन होने से रायकृष्ण दास ने राजपूताना राज्य में पल्लवित चित्रकला को 'राजस्थानी चित्र–शैली' का नाम दिया, जिसे सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है। राजस्थानी चित्रों की विषय वस्तु मुख्य रूप से धार्मिक कथाओं पर आधारित रही है। 17 वीं सदी का युग राजस्थानी चित्रकला का स्वर्णिम काल माना है।

www.rajteachers.com

राजस्थान के मन्दिर

स्तूप और मंदिरों के बारे में आपने पिछली कक्षा में पढ़ा था। मंदिरों का विकास गुप्तकाल से माना जाता है। ऐसा मानना है कि भारतवर्ष में शिखर मंदिरों के निर्माण का प्रारंभ उत्तर गुप्त काल में हुआ, जिनका विकास गुर्जर–प्रतिहार, गुहिल, चन्देल, राठौड़, परमार, सोलंकी, चालुक्य व पाल शासकों के काल में होता रहा।

मंदिर शब्द से तात्पर्य है, वह स्थान जहाँ हम अपने आराध्य देवी– देवता की पूजा करते हैं। मंदिर का तलछन्द/भूमि तल विस्तार (ग्राउण्ड प्लान) मुख्यतः– 1. प्रवेश मण्डप 2. सभा मण्डप और 3. गर्भगृह में विभाजित होता है। इसकी जानकारी के लिए साथ में दिए गए चित्र को देखें। इसका ऊर्ध्व विस्तार (एलीवेशन) पीठ, मण्डोवर, शिखर आदि में विभाजित होता है। गुप्तोत्तर युग से आज तक मंदिर बनाने की यही शास्त्रीय परम्परा रही है, जिनके निर्माण में शिल्प शास्त्र के नियमों का अनुसरण किया जाता है। राजस्थान में मध्यकाल में कई महत्वपूर्ण मंदिरों का निर्माण हुआ है। कई तो आपने स्वयं भी देखे होंगे।

मंदिर के भागों के नाम

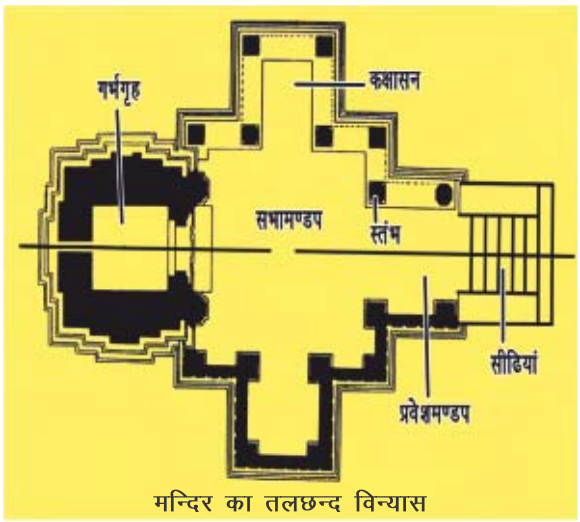

मन्दिर का तलछन्द विन्यास

रणकपुर जैन मंदिर (पाली)

www.rajteachers.com

यहाँ राजस्थान के कुछ प्रमुख मंदिरों की सूची दी जा रही है। यथा–

मेवाड़ क्षेत्र के प्रमुख मंदिर– जगदीश मंदिर (उदयपुर) सास–बहु मंदिर (नागदा–उदयपुर), अम्बिका मंदिर (जगत–उदयपुर), श्री नाथजी का मंदिर (राजसमन्द), श्री एकलिंगनाथ मंदिर (उदयपुर), ऋषभदेव मन्दिर (उदयपुर) जैन मन्दिर आदि।

मारवाड़ क्षेत्र के प्रमुख मंदिर– देलवाड़ा का जैन मन्दिर (आबू पर्वत– सिरोही), रणकपुर का जैन मंदिर (पाली), किराडू के मंदिर (बाड़मेर), ओसिया के मंदिर (जोधपुर), जैसलमेर के जैन मंदिर आदि।

जैन मन्दिर रणकपुर (पाली)–हाड़ौती क्षेत्र के प्रमुख मंदिर– बाड़ोली (रावतभाटा), भण्डदेवरा (बांरा), कमलेश्वर महादेव (बूंदी), झालरापाटन (झालावाड़) आदि।

शेखावटी–जयपुर क्षेत्र के प्रमुख मंदिर–आभानेरी मंदिर (दौसा), खाटूश्याम जी (सीकर), गोविन्द देव जी का मंदिर जयपुर आदि।

बाड़ोली के मन्दिर

मंदिर बनते कैसे थे ? कौन इन्हें बनाने के लिए पूँजी देता था ? ये किस उद्देश्य से बनते थे ? आइए अब इसकी जानकारी प्राप्त करें–

इन मंदिरों का निर्माण महाराजाओं, रानियों, जागीरदारों और श्रेष्ठि संघो द्वारा समय समय पर करवाया जाता था। कभी–कभी मंदिर बनाने वाला अपना बड़प्पन भी दिखाना चाहता था। मंदिरों की देख–रेख के लिए स्थानीय शासकों द्वारा व्यवस्था की जाती थी। सरकार द्वारा सुरक्षित देवालयों की पूजा–अर्चना का दायित्व वर्तमान में 'देवस्थान विभाग' द्वारा किया जाता है।

राजस्थान की मूर्तिकला

गुप्तकालीन भारतीय मूर्तिकला के आदर्श तत्वों ने कला को नया रूप प्रदान किया। गुप्त युगीन

www.rajteachers.com

मूर्तिकला परम्परा के प्रभावों से राजस्थान प्रभावित रहा है।

इस समय राजस्थान में वैष्णव, शैव, शाक्त आदि धर्मों के प्रसार के साथ–साथ जैन धर्म को भी राजकीय संरक्षण प्राप्त था। इसलिए राजस्थान में उपर्युक्त धर्मों के देवी–देवताओं के देवालय एवं प्रतिमाओं का पर्याप्त मात्रा में निर्माण किया गया।

राजस्थान में मूर्तियों से अलंकृत देवालयों का निर्माण गुर्जर–प्रतिहार, परमार, चौहान, गुहिल शासकों के सरंक्षण में हुआ है, किन्तु प्रतिहारों का योगदान सर्वाधिक रहा है।

शैव धर्म की प्राचीन परम्परा में शिव के लिंग–विग्रह और मानवीय प्रतिमाएँ पर्याप्त मात्रा में निर्मित हुई हैं। इन प्रतिमाओं में महेश मूर्ति, अर्द्धनारीश्वर, उमा–महेश्वर, हरिहर व अनुग्रह मूर्तियों को पर्याप्त उत्कीर्ण किया गया है। इन सभी प्रतिमाओं का सौन्दर्य अनुपम है।

महिषासुर मर्दिनी (जगत–उदयपुर)

महिषासुर मर्दिनी (ओसियाँ–जोधपुर)

त्रिविक्रम, नागदा–उदयपुर

वैष्णव धर्म का प्रसार राजस्थान में ईसा–पूर्व प्रथम–द्वितीय सदी में नगरी के अभिलेखीय विवरण से मिलता है। वैष्णव प्रतिमाओं में दशावतार प्रतिमाएँ, लक्ष्मीनारायण, गजलक्ष्मी, गरुड़ासीन विष्णु आदि की प्रतिमाओं में वैकुण्ठ, अनन्त त्रैलोक्य मोहन इत्यादि पर्याप्त रूप में उत्कीर्ण की गई हैं।

पूर्व मध्यकाल में शाक्त मत का व्यापक प्रसार था। परिणामस्वरूप कई शाक्त देवालयों का निर्माण हुआ। इन देवालयों में ''महिषासुर मर्दिनी' की प्रतिमाओं की प्रधानता है।

शेषशायी विष्णु –बाड़ोली

नटराज–बाडोली

www.rajteachers.com

सूर्यमत का प्रभाव 8–9 वीं सदी से देखा जा सकता है। औसियाँ, वरमाण (सिरोही),झालरापाटन, चित्तौड़गढ़, उदयपुर में आज भी सूर्य मन्दिर स्थित हैं। सिरोही क्षेत्र में बसन्तगढ़ और आहाड़ क्षेत्र से प्राप्त धातु की जैन प्रतिमाएँ इसके प्राचीनतम उदाहरण है। मीरपुर, आबू, देलवाड़ा जैन मंदिर, रणकपुर, चित्तौड़गढ़, ओसियाँ में जिनालयों के निर्माण की परम्परा इसके सुन्दर उदाहरण हैं।

इस युग की हिन्दू व जैन प्रतिमाओं के निर्माण में भारतीय प्रतिमा विज्ञान के नियमों का अनुसरण किया गया है। प्रतिमाओं में आभूषण, परिधान व केश–विन्यास एवं विभिन्न मुद्राओं में उत्कीर्ण प्रतिमाएँ इस युग की मूर्तिकला की प्रधान विशेषताएँ हैं।

चतुर्मुखी शिवलिंग (कल्याणपुर)

गतिविधि–

राजस्थान के मन्दिरों या अन्य स्थानों पर स्थापित मूर्तियों के चित्रों का संग्रह कीजिए तथा इनके चित्र भी बनाने का प्रयास कीजिए।

हवेलियाँ

राजस्थान में हवेलियों के निर्माण की स्थापत्य कला भारतीय वास्तुकला के अनुसार रही है। जयपुर की हवेली परम्परा इतनी प्रसिद्ध हुई कि बाद की समृद्धि के साथ ही शेखावटी के श्रेष्ठों ने अपने–अपने गाँव में विशाल हवेलियाँ बनवाने की परम्परा ही डाल दी। रामगढ़, नवलगढ़, मुकुन्दगढ़ की विशाल हवेलियाँ, हवेली–शैली स्थापत्य के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

पटवों की हवेली (जैसलमेर)

जैसलमेर की सालमसिंह की हवेली, नथमल की हवेली तथा पटवों की हवेली तो पत्थर की जाली एवं कटाई के कारण संसार में प्रसिद्ध है।

करौली, भरतपुर, कोटा की हवेलियाँ भी अपने कलात्मक कार्यों के कारण बेजोड़ गिनी जाती हैं।

छतरियाँ

राजस्थान में राजाओं का राज्य रहा एवं यहाँ का श्रेष्ठि–वर्ग सम्पन्न रहा, अतः मरणोपरान्त उनकी याद में स्थापत्य की दृष्टि से विशिष्ट स्मारक बनाए गये, जिन्हें छतरियों और देवल के नाम से जाना जाता है।

अलवर में मूसी महारानी की छतरी, करौली में गोपालसिंह की छतरी, बूँदी में चौरासी खम्भों की छतरी, रामगढ़ में सेठों की छतरी, गेटोर में ईश्वर सिंह की छतरी, जोधपुर में

बूँदी की चौरासी खम्भों की छतरी

www.rajteachers.com

जसवन्त सिंह का थड़ा, उदयपुर में आयड़ की छतरियाँ, जैसलमेर में बड़ा बाग की छतरियों का स्थापत्य सौन्दर्य देखते ही बनता हैं।

शेखावटी की छतरियाँ

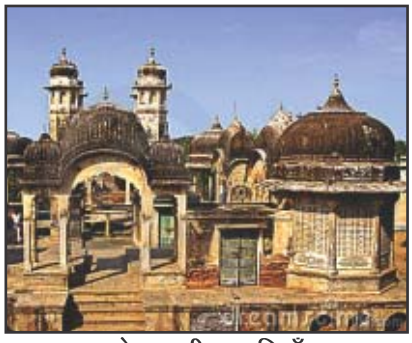
शेखावटी छतरियाँ

शेखावटी की छतरियों में चित्रित मानव जीवन के विविध दृश्य अतीव आकर्षक हैं। राजाओं पर बने स्मारक भी इस क्षेत्र में संख्या में अधिक हैं। सीकर के शासकों देवीसिंह और लक्ष्मणसिंह पर विशाल छतरियाँ सीकर में बनी हुई हैं। माधोसिंह, कल्याण सिंह और हरदयाल सिंह की छतरियों की सादगी, विशालता, उन्नत अधिष्ठान आदि इनके मूलभूत तत्व है। शेखावटी की छतरियाँ शेखावत काल के वीरों का मुँह बोलता इतिहास है।

रामगढ़ शेखावटी धनाढ्य सेठों की नगरी कहलाती है। सेठ देश–विदेशों में व्यापार से संचित अपार धन का सदुपयोग बड़ी–बड़ी आलीशान हवेलियों के बनवाने में करते थे।

रामगोपाल पोद्दार की छतरी शेखावटी संभाग की सबसे बड़ी छतरी मानी जाती है।

अलवर की छतरियाँ

अलवर की छतरियाँ

अलवर के नैड़ा अंचल की छतरियों में कला और शिल्प का अनूठा संसार चित्रित है। ये भित्ति चित्रण की तात्कालीन दक्षता के साथ शिल्पकला के वैशिष्ट्य को भी दर्शाती है।

मंडोर की छतरियाँ

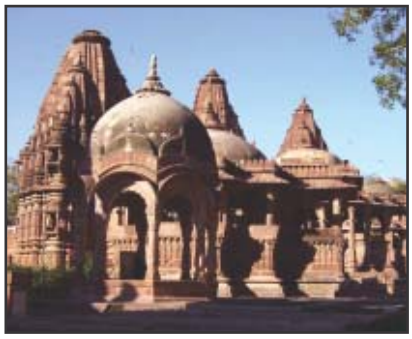
मंडोर की छतरियाँ

लम्बे समय तक मारवाड़ की राजधानी रहे मंडोर में, स्थापत्य कला की नक्काशी से युक्त विशाल देवल व पास ही बने पंचकुंडा में भव्य छतरियाँ भी हैं, जो मंडोर के नैसर्गिक सौन्दर्य में चार चाँद लगाती है।

मंडोर में देवलों के नाम से विख्यात स्मृति स्मारक है, जिनमें राम मालदेव से लेकर तख्तसिंह तक के मारवाड़ के शासकों के विख्यात स्मारक है। ये स्मारक लाल घाटू के पत्थरों से निर्मित हैं, जिन पर पाषाण के शिल्पियों की सुन्दर तक्षण कला स्पष्ट तौर पर देखी जा सकती है। विशालकाय देवलों में महाराजा जसवन्तसिंह, अजीतसिंह व तख्तसिंह के देवल तो यहाँ की विशेष निधि बन गए है।

www.rajteachers.com

शब्दावली

ताड़पत्र	–	ताड़ के वृक्ष का पत्ता।
खरल	–	पत्थर की वह कुँड़ी जिसमें चीजें कुटी जाती हैं।
मकबरा	–	वह इमारत जिसमें किसी की कब्र हो।
प्राचीर	–	चारदीवारी।

अभ्यास प्रश्न

प्रश्न एक व दो के सही उत्तर कोष्ठक में लिखिए –

1. पटवों की हवेलियाँ हैं–
   (अ) जैसलमेर में (ब) जोधपुर में (स) जयपुर में (द) उदयपुर में ( )
2. देलवाड़ा के जैन मन्दिर हैं–
   (अ) सिरोही में (ब) जोधपुर में (स) जसपुर में (द) उदयपुर में ( )
3. स्तम्भ–अ को स्तम्भ–ब से सुमेलित कीजिए–

स्तम्भ–अ	स्तम्भ–ब
1. कुम्भलगढ़	झालावाड़
2. रणथम्भौर	जैसलमेर
3. सोनारगढ़	सवाईमाधोपुर
4. गागरोन	राजसमंद

4. परकोटा एवं प्राचीर क्या है ?
5. दुर्ग किसे कहते है ?
6. चित्तौड़गढ़ के किले का निर्माण किसने करवाया ?
7. चित्रशैली से क्या तात्पर्य है ?
8. पोथी चित्र शैली की क्या पहचान है ?
9. राजस्थान की मूर्तिकला की प्रसिद्ध प्रतिमाएँ कौन–कौन सी है ?
10. मारवाड़ के प्रमुख मन्दिर कौन–कौन से है ?
11. राजस्थानी चित्र शैली से क्या तात्पर्य है ?
12. राजस्थान में जैन मन्दिरों के किसी एक केन्द्र का विवरण लिखें।

गतिविधि–

1. राजस्थान के किलों की सूची बनाएँ ।
2. अपने आस–पास के मन्दिरों की सूची अपने गुरुजी और बड़ों की मदद से बनाएँ।
3. अपने आस–पास हवेलियों और छतरियों के चित्रों का संकलन कीजिए।
4. मध्यकालीन चित्रकला शैली आधारित कुछ चित्र बनाएँ।

www.rajteachers.com

अध्याय 20

भक्ति व सूफी आंदोलन

ईश्वर का सानिध्य प्राप्त करने के लिए अनेक तरीके अपनाए जाते हैं। इसके लिए लोग मंदिर, मस्जिद अथवा गिरजाघर जैसे धार्मिक स्थलों पर जाकर पूजा–आराधना करते हैं। हम कह सकते हैं कि ये लोग ईश्वर की भक्ति कर रहे हैं। इस तरह से भगवान् की भक्ति करने का, भगवान् को याद करने का यह एक तरीका है। समय–समय पर देश में अनेक धार्मिक महापुरुष हुए जिन्होंने लोगों को भक्ति मार्ग का अनुसरण करने का उपदेश दिया। मध्यकाल में भी विभिन्न संतों द्वारा भक्ति आन्दोलन की धारा बहाई गई।

भक्ति आन्दोलन का तात्पर्य

भक्ति शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के भज शब्द से हुई है, जिसका तात्पर्य भजना अथवा उपासना करना है। जब व्यक्ति सांसारिक कार्यों से विरक्त होकर एकान्त में तन्मयता के साथ ईश्वर का स्मरण करता है, तो उसे भक्ति कहा जाता है एवं भक्ति करने वालों को भक्त कहा जाता है।

भक्ति आन्दोलन का उद्भव

भारत में भक्ति की परम्परा अनादि काल से चली आ रही है। कहा जाता है कि भक्ति की परम्परा का प्रचलन महाभारत के समय में भी था। जब गीता में अर्जुन से भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं कि सभी धर्मों को छोड़ कर तुम मेरी शरण में आ जाओ, तब अर्जुन को भगवान् श्री कृष्ण भक्ति मार्ग पर चलने का उपदेश दे रहे होते हैं।

यदि भक्त सच्चे मन से भक्ति करे तो ईश्वर कई रूपों में भक्त को मिल सकता है। भक्ति के लिए ईश्वर के कई रूप देखने को मिलते हैं। कहीं मनुष्य के रूप में तो कहीं प्रकृति के विविध रूपों में।

भक्ति आन्दोलन की विशेषताएँ

इस युग के भक्ति आन्दोलन के संतों की एक विशेषता यह थी कि ये स्थापित जाति भेद, समाज में फैली असमानताओं एवं कुप्रथाओं पर सवाल भी उठाते थे। अपने प्रभु से प्यार करने में, लोगों के साथ मिल बैठकर रहने में ही सार है, ये समझाते थे। वे अपने अनुयायियों को सीख देते थे कि हमें परमात्मा द्वारा बताए मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। भक्ति परम्परा से जुड़े सभी संत हर किसी से प्यार करने पर जोर देते थे। इनकी रचनाओं में बार–बार यह कहा गया है कि न कोई ऊँचा है और न कोई नीचा सभी मानव बराबर हैं।

भक्ति–काव्य

अपनी बात ये सीधी सरल और बोलचाल की भाषा में कहते थे। अधिकांश भक्त–संत अपनी बात काव्य के जरिये कहते थे। लोगों को इनकी बात आसानी से समझ में आ जाती थी। चौदहवीं सदी आते–आते दक्षिण भारत के अनुरूप उत्तर भारत में भी भक्ति परम्परा की धारा बहने लगी।

भक्त संतों द्वारा रचित काव्य कहीं भगवान् के प्रति प्रेम को प्रदर्शित करते, कहीं ईश्वर के अनेक रूपों की कथाएँ सुनाई जाती। समाज में फैली बुराइयों पर कटाक्ष होता, आडम्बरों को नष्ट करने की बात

www.rajteachers.com

आती और जाति–भेद के खिलाफ आवाज़ उठाई जाती। संत कबीर और संत गुरू नानक आदि से जिस विचारधारा का उद्‌भव हुआ है उसकी लहर आज भी दिखाई देती है मीराबाई के गीत आज भी लोगों को भगवत्–प्रेम के लिए प्रेरित करते हैं। आज भी भक्ति संतों की रचनाओं को लोग पढ़ते हैं, गाते हैं, और उन पर नाचते हैं।

दक्षिण भारत में भक्ति धारा

भक्ति धारा की लोकप्रियता दक्षिण भारत में सातवीं और नवीं सदी के बीच देखने को मिली। इसका श्रेय वहाँ के घुमक्कड़ी साधुओं को जाता है। इन घुमक्कडों में शिव भक्त नयनार के नाम से जाने जाते थे। कुछ विष्णु भक्त थे। इन्हें अलवार कहा जाता था। इन घुमक्कड़ी साधुओं की विशेषता यह थी कि ये गाँव–गाँव जाते और देवी–देवताओं की प्रशंसा में सुन्दर काव्य लिखते और उन्हें संगीत बद्ध करते।

नयनार और अलवार संतों में अनेक जातियों के लोग शामिल थे। नयनार और अलवार संतों में कई ऐसे थे जो कुम्हार, किसान, शिकारी, सैनिक, ब्राह्मण, मुखिया जैसे वर्गों में पैदा हुए तथा अनेक उस समय मानी जाने वाली 'अस्पृश्य' जातियों में पैदा हुए थे। तथापि वे अपने उच्च विचारों एवं नैतिक मूल्यों की शिक्षा देने के कारण देश में समान रूप से प्रसिद्ध हुए।

प्रमुख नयनार संतों के नाम : अप्पार, संबंदर, सुन्दरार, मणिक्कवसागार
प्रमुख अलवार संतों के नाम : पेरियअलवार, पेरियअलवार की बेटी अंडाल, नम्मालवार, तोंडरडिप्पोडी अलवार।

भक्ति परम्परा के अधीन दक्षिण में (कर्नाटक में) ग्यारहवीं सदी में रामानुज ने विष्णु की पूजा पर जोर दिया।

रामानन्द :– रामानन्द भक्ति आन्दोलन के क्षेत्र में उत्तर एवं दक्षिण के बीच एक कड़ी तथा सेतु के समान थे। ये उत्तरी भारत के भक्ति आन्दोलन के प्रवर्तक माने जाते हैं। इन्होंने भक्ति के द्वारा जन–जन को नया मार्ग दिखाया। एकेश्वरवाद पर जोर देकर राम की भक्ति पर बल दिया। जाति भेद का विरोध करते हुए सामाजिक समानता पर बल दिया। उन्होंने संस्कृत के बजाय बोलचाल की भाषा में उपदेश दिए, जिससे जन साहित्य का विकास हुआ। रामानन्द के

रामानन्द

भक्त कवयित्री अंडाल

भक्त सन्तों में से एक भक्त अंडाल को दक्षिण की मीरा भी कहा जाता है। अंडाल द्वारा रचित थिरूपवाई की रचना आज भी गाई जाती है। अंडाल का जन्म आठवीं सदी में हुआ था।

प्रमुख भक्त सन्त–

रामानन्द	कबीर
गुरू नानक	चैतन्य महाप्रभु
रविदास	दादू
मीराबाई	चोखामेला
समर्थ गुरू रामदास आदि	

www.rajteachers.com

शिष्यों में सभी जातियों के लोग थे जिनमें रैदास, बीर, धन्ना, तथा पीपा आदि प्रमुख थे।

उत्तरी भारत में भक्ति धारा

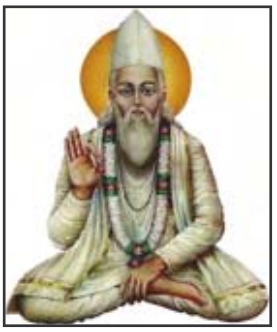
कबीर

कबीर :– कबीर मात्र भक्त सन्त न होकर बड़े समाज सुधारक थे। उन्होंने समाज में फैली हुई कुरीतियों का डटकर विरोध किया। जनसाधारण की भाषा में उन्होंने बताया कि प्रभु सबके है, उन पर किसी वर्ग, व्यक्ति तथा धर्म–जाति का अधिकार नहीं है। कबीर धार्मिक क्षेत्र में सच्ची भक्ति का सन्देश लेकर प्रकट हुए थे। महात्मा बुद्ध के बाद कबीर, गुरूनानक आदि ने भी जातीय असमानता का विरोध किया। कबीर के अनुसार सभी व्यक्ति जन्म से समान है। जिस व्यक्ति ने अपने पवित्र कर्मों से भक्ति को अपनाया है, उसकी जाति का सम्बन्ध पूछना अनुचित है।

कबीर कर्म की श्रेष्ठता पर भी बल देते थे। ईश्वरीय एकता के सन्देश के कारण हिन्दू व मुसलमान सभी उनके अनुयायी बनने लगे। समकालीन समाज व धर्म के क्षेत्र में उनकी बातों का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा था। कबीर के उपदेश हमें उनकी 'साखियों' व 'पदों' में मिलते हैं। कबीर ने बाहरी आडम्बरों का कड़ा विरोध किया।

कबीर के बारे में ऐतिहासिक जानकारी बहुत कम है। मान्यता है कि वे पंद्रहवीं–सोलहवीं सदी में हुए थे। उनका पालन–पोषण बनारस या उसके आस–पास रहने वाले जुलाहे परिवार में हुआ था। कबीर के भजन कई घूमंतु धार्मिक गायक गाते थे और ये भजन काफी लोकप्रिय रहे। इनमें से अनेकों को गुरू ग्रंथ साहिब, पंचवाणी और बीजक में संग्रहीत किया गया है।

कबीर ने गुरू को ईश्वर से भी अधिक महत्व दिया और कहा है कि –

गुरू गोविन्द दोनों खड़े, काके लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरू आपने, गोविन्द दियो बताय।।

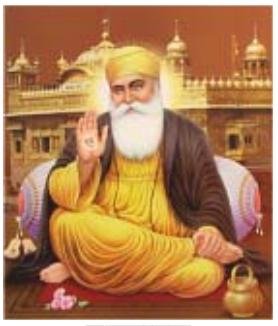
गुरूनानक

गुरूनानकः– कबीर के समान मध्यकालीन समाज को प्रभावित करने वाले सन्तों में गुरूनानक का नाम भी महत्वपूर्ण है। कबीर की तुलना में गुरू नानक के बारे में ऐतिहासिक जानकारी ज्यादा मिलती है। गुरु नानक का जन्म 1469 ई में तलवंडी में हुआ था। आजकल यह पाकिस्तान में है और इसे ननकाना साहिब के नाम से जाना जाता है। ये सिक्ख पंथ के संस्थापक थे तथा निर्गुण उपासना के समर्थक थे। कई जगहों पर घूमने के बाद उन्होंने करतारपुर में रावी नदी के तट पर अपना डेरा बसाया, जहाँ उनके अनुयायी जात–पांत त्याग कर इकट्ठे होकर खाना खाते थे। इसे 'लंगर' कहते थे। नानक ने उपासना और कार्य के लिए जो जगह नियुक्त की उसे 'धर्मसाल' कहते थे। आजकल उसे 'गुरुद्वारा कहते हैं। नानक के अनुयायी सभी जातियों से थे।

नानक ने अंधविश्वासों और गलत मान्यताओं को दूर करने का प्रयास किया। वे हिन्दू–मुसलमानों को समान दृष्टि से देखते थे। नानक ने अपनी बातें सीधी व सरल भाषा में कही।

www.rajteachers.com

मुस्लिम सन्तों का सत्संग भी उन्होंने किया। गुरुनानक के मत में सच्चा समन्वय वही है, जो ईश्वर की मौलिक एकता और उसके असर से मानव की एकता को पहचानने में सहायता दे। नानक के प्रभाव से देश को नई दिशा मिली तथा समानता, बंधुता, ईमानदारी तथा सृजनात्मक श्रम के द्वारा जीविकोपार्जन पर आधारित नई समाज व्यवस्था स्थापित हुई। गुरुनानक तथा उनके बाद आने वाले गुरुओं के उपदेशों से आगे चलकर एक नया मत 'सिख मत' भारत में उदित हुआ।

रैदास

रैदास (रविदास) :– रैदास कबीर के समकालीन थे। ये रामानन्द के परम शिष्य थे तथा जाति से चमार एवं निर्गुण भक्ति करते थे। रैदास जाति–पांति के भेदभाव में विश्वास नहीं करते थे। वे बाह्य आडम्बरों को व्यर्थ समझते और मन की शुद्धता पर जोर देते थे। मानव समानता उनका प्रमुख सिद्धान्त था। उनका कहना था–

ऐसा चाहो राज में, जहाँ मिलै सबन को अन्न।
छोट बड़ों सब सम बसै, रविदास रहै प्रसन्न।।

पूर्वी भारत में भक्ति धारा

चैतन्य महाप्रभु

चैतन्य महाप्रभु :– भक्त सन्तों में बंगाल के चैतन्य महाप्रभु प्रमुख सन्त माने जाते हैं। चैतन्य कृष्ण के बहुत बड़े भक्त थे। इनके अनुसार "यदि कोई व्यक्ति भगवान् कृष्ण की उपासना करता है और गुरू की सेवा करता है तो माया के जाल से (कष्टों से) मुक्त हो जाता है और ईश्वर से एकाकार हो जाता है।" चैतन्य ने कर्मकाण्ड की निन्दा की। इन्होंने बताया कि व्यक्ति भक्ति में लीन होकर संकुचित भावना से मुक्त हो जाता है।

गतिविधि–

इस पाठ में यथास्थान उत्तर भारत के कुछ भक्त संतों के पद दिए गए हैं। उन्हें पढ़ें और समझने की कोशिश करें कि उसमें क्या कहा गया हैं ? सभी सन्तों ने किन बातों पर जोर दिया हैं? इन्हें समझने के लिए अपने घर के बड़ों व गुरुजी की मदद ले सकते हैं।

महाराष्ट्र में भक्ति धारा

महाराष्ट्र में ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम और समर्थ गुरु रामदास जैसे संत हुए। यहीं पर सखूबाई नामक महिला और चोखामेला का परिवार भी लोकप्रिय थे।

महाराष्ट्र में इस काल में पंढरपुर नाम की जगह की बड़ी मान्यता थी। पंढरपुर का नाम विट्ठल नाम के स्थानीय देवता के साथ जुड़ा है। यहां भक्तगण विट्ठल की पूजा करते थे। विट्ठल को विष्णु का स्वरूप माना जाने लगा। यहाँ भी अनेक जाति और समुदायों के लोग इकट्ठे होकर अपने आराध्य की भक्ति करते थे। आजकल तो पंढरपुर की यात्रा पर हजारों लोग हर साल, पैदल चल कर जाते हैं। इन सन्तों के विचार आज भी समाज में सजीव हैं। भक्ति धारा से सम्बन्धित स्थानों पर आज भी लोग बड़ी तादाद में यात्रा करने जाते हैं।

www.rajteachers.com

समर्थ गुरु स्वामी रामदास

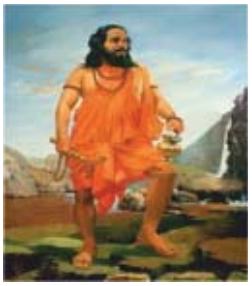
समर्थ गुरू रामदास

समर्थ गुरु स्वामी रामदास का जीवन भक्ति व वैराग्य से ओत–प्रोत था। उनके मुख से सदैव 'राम नाम' का जाप चलता रहता था। वे संगीत के उत्तम जानकार थे। ऐसा माना जाता है कि स्वामी रामदास प्रति दिन एक हजार दो सौ सूर्य नमस्कार करते थे। इसलिए उनका शरीर अत्यंत बलवान था। उनका ग्रन्थ 'दासबोध' एक गुरु–शिष्य के संवाद के रूप में है। स्वामी जी अद्वैत वेदांति और भक्ति मार्गी सन्त थे। उन्होंने अपने शिष्यों की सहायता से समाज में एक चेतना दायी संगठन खड़ा किया। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक 1100 मठ तथा अखाड़े स्थापित कर स्वराज्य स्थापना के लिए जनता को तैयार किया। ये छत्रपति शिवाजी के गुरु थे। आप भक्ति व शक्ति के प्रतीक हनुमान जी के उपासक थे।

चोखामेला

चोखामेला

महाराष्ट्र में जिन सन्तों ने जाँति–पाँति का भेदभाव मिटा कर भगवान की भक्ति की उनमें सन्त चोखामेला का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। उन्हें विठ्ठल–कृपा प्राप्त थी। सन्त ज्ञानेश्वर की सन्त मण्डली में चोखामेला का बड़ा आदर था। वे महार जाति के थे जो कि उस समय अस्पृश्य मानी जाती थी। उनके मन में बचपन से ही ईश्वर भक्ति और सन्तों जैसा जीवन जीने की इच्छा थी। विट्ठल–दर्शनों के लिए वे प्रायः पंढरपुर जाते रहते थे। उन दिनों पंढरपुर में सन्त नामदेव का बड़ा प्रभाव था। वे विट्ठल के मंदिर में भजन गाया करते थे। नामदेव के अभंग (भजन) सुनकर चोखामेला इतने प्रभावित हुए कि उन्हें अपना गुरु मानने लगे। उनके पूरे परिवार ने सन्त नामदेव से दिक्षा ली थी। उनके अभंगों की संख्या करीब 300 बताई जाती हैं। उनकी पत्नी सोयराबाई भी भक्त थी। सोयराबाई के एक अभंग का अर्थ है – "हे प्रभु ! तेरे दर्शन करने से मेरे हृदय की सब वासनाएँ नष्ट हो गई है"।

सामाजिक परिवर्तन के आन्दोलन में चोखामेला पहले सन्त थे जिन्होंने भक्ति काव्य के दौर में सामाजिक–गैर बराबरी को समाज के सामने रखा। अपनी रचनाओं में वे वंचित समाज के लिए खासे चिंतित दिखाई पड़ते हैं। इन्हें भारत के वंचित वर्ग का पहला कवि कहा जाता है। उनके उपदेशों का सभी लोग बड़े प्रेम से सुनते थे।

राजस्थान में भक्ति धारा

राजस्थान में प्रारंभिक काल से ब्रह्मा और सूर्य की पूजा लोकप्रिय रही है। विष्णु के अवतार के रूप में राम और कृष्ण की पूजा का भी काफी प्रचलन है। साथ ही शिव शक्ति व विष्णु तथा गणेश, भैरव, कुबेर, हनुमान, कार्तिकेय, सरस्वती आदि की भी पूजा होती है। राजस्थान में जैन धर्म का भी काफी प्रचलन है। राजस्थान के राजपूत शासक हिन्दू धर्म के अनुयायी थे व शक्ति की उपासना करते थे। शेष हिन्दुस्तान के समान ही, यहाँ भी धार्मिक सहिष्णुता रही है। सभी धर्म बराबरी से, शान्ति के साथ रहते आए हैं।

www.rajteachers.com

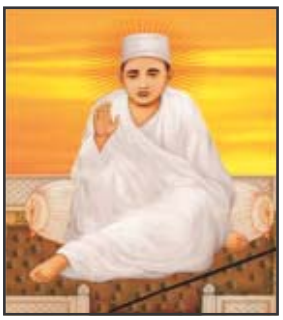
दादू दयाल

दादू दयाल :–निर्गुण उपासना के समर्थक संत दादू बाहरी साधना से ध्यान हटाकर व्यक्तिगत साधना पर जोर देते थे। दादू ने ईश्वर की भक्ति को समाज सेवा एवं मानववादी दृष्टि से जोड़ा। दादू ने अहंकार से दूर रहकर विनम्रता से ईश्वर के प्रति समर्पित रहने की शिक्षा दी है। दादू ने बताया कि ईश्वर की प्राप्ति न केवल प्रेम और भक्ति के माध्यम से ही संभव है, बल्कि मानवता के प्रति सेवा से भी संभव हो सकती है। दादू पहले सांभर व फिर आमेर आकर रहने लगे। जयपुर के पास नरायणा गांव में इनकी मृत्यु हुई। दादू पंथी गुरू को अधिक महत्व देते हैं। इनके शिष्य विभिन्न धर्मों, वर्गों एवं जातियों से सम्बद्ध थे। इनकी शिक्षाएँ 'दादू दयाल री वाणी' और 'दादू दयाल रा दूहा' में संगृहीत है। दादू के अनुसार ब्रह्म एक है और वह सब जगह है।

मीरा बाई

मीरा बाईः– राजस्थान भक्ति और शक्ति का प्रदेश रहा है। यहाँ के भक्त संतों में मीराबाई का नाम सर्वप्रमुख है। मीराबाई ने अपना जीवन कृष्ण भक्ति में समर्पित कर दिया। उनके द्वारा रचे काव्य प्रेम भाव से परिपूर्ण थे। अपने काव्य में उन्होंने महिला जागृति की बातें कही है। भक्त शिरोमणि मीराबाई का जन्म 16वीं सदी में मेड़ता में हुआ था। इनके पिता रतनसिंह मेड़ता के शासक दूदाजी के चौथे पुत्र थे। मीराबाई अपने पिता की इकलौती बेटी थी। मीरा के दादा–दादी भगवान् कृष्ण के परम भक्त थे और मीरा बचपन से ही कृष्ण भक्ति के गीत गाया करती थी।

इनका विवाह मेवाड़ के महाराणा सांगा के बड़े बेटे भोजराज से हुआ। विवाह के सात साल बाद ही इनके पति का देहान्त हो गया और शीघ्रही इनके ससुर राणा सांगा और पिता रतनसिंह का भी देहान्त हो गया। इसके पश्चात् मीराबाई पूर्णरूप कृष्ण भक्ति में डूब गई। वृन्दावन और द्वारिका में इन्होंने काफी समय भजन–कीर्तन और साधु–संगति में बिताया। मीरा वृन्दावन से द्वारका गई। द्वारका में श्रीकृष्ण की भक्ति में रणछोड़जी की मूर्ति के आगे नृत्य करते हुए मीराबाई ने संसार त्याग दिया।

मीराबाई ने अपने भजनों में श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम व समर्पण भाव को प्रकट किया, जैसा कि निम्न पंक्तियों से प्रकट होता है–

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरों न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।।

मीराबाई की काव्य रचनाएँ आज भी लोकप्रिय हैं। मीराबाई ने महिला वर्ग के सुधार और जागृति की बात कही। मीराबाई के लगभग 250 पद हैं, जो उन्हें अमर भक्त कवयित्री बना देते हैं।

रामचरणजी एवं रामस्नेही संप्रदाय

मध्यकालीन राजस्थान में जो समाज एवं धर्म सुधार के लिए संप्रदाय स्थापित किए गए, उन संप्रदायों में रामस्नेही संप्रदाय का विशेष महत्व है। इस संप्रदाय की स्थापना रामचरणजी ने की थी। इस संप्रदाय के अनेक केन्द्र राजस्थान में स्थापित हुए, जैसे– शाहपुरा (भीलवाड़ा) में संत रामचरणजी, रैण (नागौर) में संत दरियावजी, सिंहथल (बीकानेर) में संत हरिदासजी, खेडापा (जोधपुर) में संत रामदासजी आदि।

www.rajteachers.com

रामचरणजी निर्गुण भक्ति में विश्वास करते थे। इन्होंने मोक्ष प्राप्ति के लिए गुरु को अत्यधिक महत्व दिया है। उनका विचार था कि गुरु ब्रह्म के समान होता है और वही मनुष्य को संसार रूपी भवसागर से पार उतार सकता है।

इस संप्रदाय में राम की उपासना पर बल दिया गया है। राम से उनका अभिप्राय निर्गुण निराकार ब्रह्म से है। उन्होंने मूर्ति पूजा व बाह्य आडम्बरों का विरोध किया।

सूफीवाद

सूफी मत का तात्पर्य एवं उद्देश्य– कहा जाता है कि सूफी वे कहलाए जो 'सफ यानी – सफ़ेद ऊन का कपड़ा पहनते थे। उनके सीधे, साधारण कपड़े पहनने का मतलब यह था कि ये वे लोग थे जो सीधे और सरल वस्त्र धारण करते थे, सीधी सरल जिंदगी जीते थे और लोगों को सीधे सरल तरीके से, प्रेम पूर्वक रहने को प्रेरित करते थे। सूफी संतों ने इस्लाम के एकेश्वरवाद का पालन किया। ये आमतौर पर वे थे जिन्होंने मुस्लिम धार्मिक विद्वानों द्वारा स्थापित इस्लामिक परम्परा की जटिलताओं और आचार–संहिता का विरोध किया। सूफी संतों ने धर्म के बाहरी आडम्बर को त्याग कर भक्ति और सभी मनुष्यों के प्रति दया तथा प्रेम भाव पर बल दिया। संत कवियों की तरह भारत में सूफी संत भी अपनी बात कविता के जरिये कहते थे। वे अपना संदेश लोगों तक कहानी सुना कर भी पहुँचाते थे। सूफियों के बारे में यह भी प्रचलित है कि इनमें कई दिव्य शक्तियाँ है। इन शक्तियों को लेकर अनेक तरह के किस्से कहानियाँ भी सूफी संतो के बारे में फैली है।

प्रमुख सूफी सन्त
- हजरत मोईनुद्दीन चिश्ती
- बाबा फरीद
- शेख नुरूद्दीन
- हजरत निजामुद्दीन औलिया
- बहाउद्दीन जकारिया
- अमीर खुसरो
- गेसूदराज

सूफियों में किसी उस्ताद, औलिया या पीर की देख रेख में अलग– अलग तरह से दिव्य शक्ति के नजदीक आने के तरीके विकसित हुए। कभी नाच कर, कभी गा कर, तो कभी केवल मनन चिंतन करके। उस्ताद पीढ़ी दर पीढ़ी शागिर्दों को सीख देते थे। इस तरह कई सिलसिलों की शुरूआत हुई। हर सिलसिले का काम करने का, विचारों का, अपना ही तरीका होता था। धीरे–धीरे हिन्दुस्तान में मध्य एशिया से भी सूफी आने लगे। ग्यारहवीं सदी तक हिन्दुस्तान दुनिया में सूफी सिलसिलों के लिए जाना जाने लगा। उस समय के कई सिलसले तो आज तक महत्वपूर्ण हैं।

इस तरह के सिलसिलों में एक प्रमुख था–चिश्ती सिलसिला। इसमें औलियाओं की एक लम्बी कतार रही है जो आज तक चली आ रही हैं। अजमेर के ख्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती, दिल्ली के कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी, पंजाब के बाबा फरीद, दिल्ली के हजरत निजामुद्दीन औलिया आज भी महत्वपूर्ण माने जाते हैं। इनके काव्य आज भी काफी प्रचलित हैं। कुछ प्रमुख सूफी सन्तों का वर्णन यहाँ दिया जा रहा है।

ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती– ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती 1192 ई. के पूर्व में भारत आए थे और बाद में इन्होंने ही भारत में सूफी मत में चिश्ती सिलसिला की शुरूआत की। भारत में कई स्थानों पर घूमने के

www.rajteachers.com

बाद वे अजमेर में स्थायी रूप से बस गए। अजमेर में सन्त मोईनुद्दीन चिश्ती की प्रसिद्ध दरगाह 'अजमेर शरीफ' के नाम से जानी जाती है। इनके मुरीद या चाहने वाले इन्हें 'ख्वाजा साहब' या 'गरीब नवाज' के नामों से भी याद करते हैं। इनके एक शिष्य शेख हमीदउद्दीन नागौरी ने नागौर के पास सुवल गांव में अपना केन्द्र बनाकर इस्लाम का प्रचार किया। चिश्ती सिलसिला संगीत को ईश्वर प्रेम का महत्वपूर्ण साधन मानता है।

अजमेर शरीफ दरगाह

हजरत निजामुद्दीन औलिया :– भारत में सूफी सन्तों में हजरत निजामुद्दीन औलिया का नाम प्रमुख है, जिनके नेतृत्व में चिश्ती सिलसिले का भारत भर में विकास हुआ। एक विशेष धर्म का अनुयायी होते हुए भी औलिया में धार्मिक और सामाजिक कट्टरता नहीं थी। हिन्दू–मुसलमानों की एकता एवं समाज सुधार में इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वे मनुष्य मात्र की एकता के सच्चे प्रतीक रहे हैं। हजरत निजामुद्दीन के विचार में संगीत ईश्वरीय प्रेम एवं सौन्दर्य से साक्षात्कार करने का अनूठा माध्यम है। भारतीय भक्ति भावना से भी सूफी–परम्परा में संगीत को प्रोत्साहन मिला है। सल्तनतकालीन प्रसिद्ध लेखक अमीर खुसरो इन्हीं के शिष्य थे। नई दिल्ली स्थित दरगाह परिसर में हजरत निजामुद्दीन औलिया की मजार के पास ही अमीर खुसरो की भी मजार है।

अमीर खुसरो

सूफी मत में कई सम्प्रदाय हैं, पर भारत में सिर्फ चार सम्प्रदायों का महत्व रहा है। यथा– कादरी, चिश्ती, सुहरावर्दी तथा नक्शबन्दी। सूफ़ियों और भक्ति संतों में बहुत समानताएँ हैं। जैसे गुरू का महत्व, नाम स्मरण, प्रार्थना, ईश्वर के प्रति प्रेम, व्याकुलता एवं विरह की स्थिति, संसार की क्षण भंगुरता, जीवन की सरलता, सच्ची साधना, मानवता से प्रेम, ईश्वर की एकता तथा व्यापकता आदि भक्ति व सूफी दोनों ही आन्दोलनों का आधार रही है। भक्ति आन्दोलन एवं सूफ़ी मत दोनों ने ही ईश्वरीय प्रेम के द्वारा मानवता का मार्ग प्रशस्त किया है।

शब्दावली

निर्गुण	–	निराकार
एकेश्वरवाद	–	केवल एक ईश्वर में विश्वास करना
सगुण	–	साकार
सिलसिला	–	पंथ या मत

www.rajteachers.com

अभ्यास प्रश्न

1. प्रश्न संख्या एक व दो के सही उत्तर कोष्ठक में लिखें–

(1) ननकाना साहिब किस संत का जन्म स्थान है।

(अ) कबीर (ब) नानक

(स) दादू दयाल (द) रामानन्द ( )

(2) चैतन्य महाप्रभु का सम्बन्ध कहाँ से था ?

(अ) बंगाल (ब) राजस्थान

(स) गुजरात (द) महाराष्ट्र ( )

2. स्तम्भ अ को स्तम्भ ब से सुमेलित करें ?

	स्तम्भ अ	स्तम्भ ब
(1)	कबीर	बंगाल
(2)	मीराबाई	तलवंडी
(3)	गुरूनानक	मेड़ता
(4)	चैतन्य महाप्रभु	बनारस

3. भक्ति में किस पर अधिक जोर दिया जाता है ?
4. महाराष्ट्र के प्रमुख सन्तों के नाम बताइए।
5. भक्ति आन्दोलन के सन्तों के उपदेशों की भाषा कैसी थी ?
6. मीराबाई का संक्षेप में परिचय दीजिए ।
7. कबीर की प्रमुख शिक्षाएँ बताइए?
9. सूफी व भक्ति सन्तों के उपदेशों में क्या समानताएँ थी ?
10. गुरू नानक के उपदेशों को लिखिए।
11. ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती का परिचय लिखिये।
12. समर्थ गुरु रामदास के बारे में आप क्या जानते हैं ?

गतिविधि–

1. कबीर के पदों का संकलन कीजिए।
2. भक्ति एवं सूफी आन्दोलन के चित्रों का संकलन करें एवं लय के साथ गाने का अभ्यास करें।
3. कबीर के कुछ दोहों को याद कीजिए एवं बाल सभा में गाकर सुनाइए।
4. अपने क्षेत्र के आस–पास के प्रसिद्ध पूजा स्थलों यथा–मन्दिरों, मस्जिदों, गुरूद्वारों, गिरजाघरों आदि की सूची बनाएँ और उनके बारे में जानकारी एकत्र करें।
5. भक्ति व सूफी धारा के प्रमुख संतों की शिक्षाओं पर अपनी कक्षा में परिचर्चा करें।

www.rajteachers.com

अध्याय 21

लोक संस्कृति

गौरवशाली अतीत, शक्ति, भक्ति, त्याग और तपस्या–स्थली राजस्थान का जितना विविधतापूर्ण प्राकृतिक परिवेश है, उतना ही सरस–सजीला है इसका सांस्कृतिक वैभव। समृद्ध लोक संस्कृति के परिचायक तीज–त्योहार, उमंग व उल्लास के प्रतीक मेले, आस्था और विश्वास के केन्द्र यहां के उपासना स्थल, कहीं घूमर तो कहीं चंग की थाप पर गींदड़, कहीं चकरी तो कहीं भवाई नृत्य के रोमांचक करतब, कहीं गैर नृत्य की गमक तो कहीं विद्युत गति का तेराताली। कहीं अलगोजे की मधुर तान तो कहीं सुरनाई। रंग–बिरंगे राजस्थान की लूंठी–अनूठी सांस्कृतिक विरासत है यहां की लोक संस्कृति। जिसका आकर्षण देशी–विदेशी पर्यटकों को यहां खींच लाता है।

प्रमुख शक्तिपीठ

'पगे–पगे देव अने डगे–डगे देवरा' लोकोक्ति को चरितार्थ करती राजस्थान की धरा कई लोक आस्था केन्द्रों को समेटे हुए हैं। सदियों से ये आस्था स्थल मानव मन की अपूरित मनोकामनाओं को पूर्ण करते आए हैं। ''आ तो सुरगा ने सरमावे, इण पर देव रमण ने आवै, इण रो जस नर नारी गावै।'' पंक्तियाँ राजस्थान की पवित्र धरा को भव्यता प्रदान करती है।

राजस्थान में ऐसे अनेक शक्तिपीठ हैं उनमें से कुछ का वर्णन यहाँ किया जा रहा है–

कैला देवी– पूर्वी राजस्थान का प्रसिद्ध शक्तिपीठ कैला देवी करौली से लगभग 25 किमी की दूरी पर स्थित है। त्रिकुट पर्वत की सुरम्य घाटी में बना कैला देवी का भव्य मंदिर अपने शिल्प और स्थापत्य के कारण दर्शनीय है। कैला देवी महालक्ष्मी के अवतार के रूप में मानी जाती है। मंदिर के पीछे काली सिंध नदी बहती है। मंदिर में महालक्ष्मी तथा चामुण्ड़ा माता की प्रतिमाएँ स्थित है।

कैलादेवी

सफेद संगमरमर से बना यह भव्य मंदिर अपनी लहराती लाल पताकाओं से सफेद और लाल रंगों के सम्मिश्रण का अद्भुत दृश्य प्रस्तुत करता है। कैला देवी के सामने हनुमान मंदिर है, जिसे स्थानीय लोग ''लांगुरिया'' कहते हैं। कैला देवी करौली के यदुवंशी राज परिवार की कुल देवी है। चैत्र मास के नवरात्र के दौरान यह आस्था स्थल सजीव हो उठता है। इन दिनों हजारों की संख्या में सुहागिन स्त्रियाँ अपनी पारंपरिक वेशभूषा में माँ कैला देवी की पूजा–अर्चना करने और अपने सुहाग की मंगल कामना के लिए आती हैं। इन दिनों लगने वाले मेले का एक और प्रमुख आकर्षण है, लांगुरिया नृत्य। अलगोजों की धुनों पर लांगुरिया गीत गाते युवक–युवतियों की टोलियाँ मेले के वातावरण को और भी भक्तिमय कर देती है। देवी के चमत्कारों के बारे में आज भी अनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित है।

जमवाय माता–जमवाय माता का प्रसिद्ध शक्तिपीठ जयपुर से लगभग 33 किलोमीटर पूर्व

www.rajteachers.com

दिशा में जमवा रामगढ़ बाँध के निकट अरावली की सुरम्य पर्वतमाला के बीच एक पहाड़ी नाके पर स्थित है।

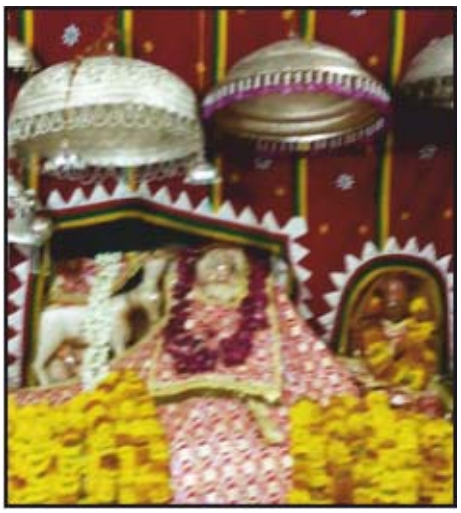
जमवाय माता

जमवाय माता का पौराणिक नाम जामवंती है। पौराणिक मान्यता है कि जम्बू शैल या जम्बूगिरी नामक जिस पर्वत पर जमवाय माता का मंदिर स्थित है, उसकी यात्रा व परिक्रमा अतीव पुण्य फलदायक होती है।

कुछ प्राचीन ख्यातों में उल्लेख है कि कछवाहा शासक दूलहराय अपने शत्रुओं से पराजित हो गया तो उसने देवी की आराधना की और जमवाय माता ने प्रसन्न होकर उसे दर्शन दिए। देवी माँ के आशीर्वाद से दूलहराय ने पुनः शत्रु पक्ष पर आक्रमण किया और युद्ध में विजय प्राप्त की। विजय प्राप्ति के बाद दूलहराय ने कुलदेवी जमवाय माता का मंदिर बनवाया, जो अभी तक विद्यमान है। जमवाय माता श्रद्धालुओं की मनौती और मनोकामनाओं को पूर्ण कर उन्हें सुख, शान्ति, समृद्धि और वंशवृद्धि का आशीर्वाद प्रदान करती है। जमवाय माता के चमत्कारों के बारे में आज भी कई जनश्रुतियाँ प्रचलित है।

करणी माता–बीकानेर से करीब 30 किमी दूर देशनोक में माँ करणीमाता का मंदिर स्थित है। इस मंदिर में हजारों की संख्या में चूहे बिना डर के इधर–उधर घूमते रहते हैं। इन चूहों को स्थानीय लोग 'काबा' कहते हैं। यह करणी माता का चमत्कार माना जाता है कि हजारों की संख्या में चूहे होने पर भी यहाँ एक बार भी प्लेग नहीं फैला। करणी माता का मंदिर संगमरमर का बना हुआ है। करणी माता की मूर्ति के सिर पर मुकुट है और गले में माला है। भारत में ही नहीं अपितु विश्व में अकेले इस चूहों के मंदिर में चैत्र माह की नवरात्रि और आश्विन माह की नवरात्रि में दो बार मेला लगता है, जहां हजारों की संख्या में श्रद्धालु आते हैं। यह माना जाता है कि देशनोक की नींव माता के द्वारा ही पड़ी है। करणी माता के चमत्कारों के बारे में कई जनश्रुतियाँ प्रचलित है।

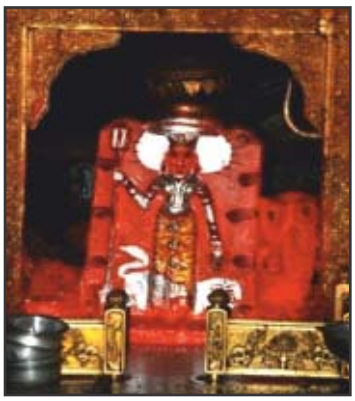
करणी माता

जीण माता–जीण माता शेखावाटी अंचल का एक प्रमुख शक्तिपीठ है। यह प्रसिद्ध शक्तिपीठ अरावली पर्वतमाला के बीच सीकर जिले से लगभग 32 किलोमीटर दूर रेवासा में स्थित है। जीण माता को माँ दुर्गा का अवतार माना जाता है और इनका असली और पूरा नाम जयन्तीमाला है, जिसका अपभ्रंश कालान्तर में जीण हो गया।

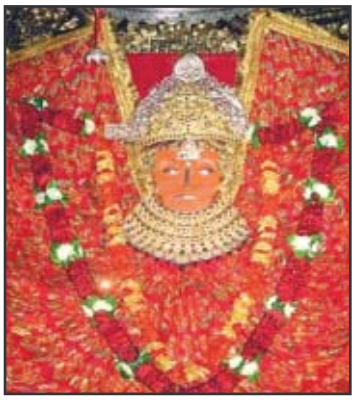
जीण माता

www.rajteachers.com

जीण माता अष्ट भुजा देवी है। मंदिर में देवी की सफेद संगमरमर की सुन्दर और भव्य प्रतिमा प्रतिष्ठापित है। इस देवी का उल्लेख भागवत् पुराण के नवें स्कन्ध में भी आया है।

यह शक्तिपीठ हजारों वर्ष पुराना है तथा मंदिर का कई बार जीर्णोद्धार तथा पुनर्निर्माण हुआ है। मंदिर का सभा मण्डप संगमरमर के 24 स्तम्भों पर आधारित है।

लोक मान्यता है कि चुरू जिले के धांधू गाँव की चौहान राजकन्या ने अपनी भावज के व्यंग्य बाणों और प्रताड़ना से व्यथित होकर सांसारिक जीवन छोड़कर आजीवन अविवाहित रहकर इस स्थान पर कठोर तपस्या की। चौहान राजकन्या के भाई हर्ष ने अपनी रूठी हुई बहिन से घर वापस जाने के लिए बहुत अनुनय–विनय की, पर वह न मानी। तब हर्ष ने भी कठोर तपस्या करना शुरू कर दिया। धीरे–धीरे जीण ने माँ दुर्गा का स्वरूप ले लिया और हर्ष भैरव के अवतार के रूप में प्रसिद्ध हुए। हर्ष और जीण से सम्बन्धित लोकगीत शेखावाटी में बहुत लोकप्रिय है। जीण माता अष्ठ भुजा वाली महिषासुर मर्दिनी के रूप में भी जानी जाती है।

ऐसी मान्यता है कि जीण माता का मंदिर हस्तिनापुर से निर्वासन के बाद पाण्डवों द्वारा यहां बनवाया गया। इस शक्तिपीठ पर चैत्र और आश्विन दोनों नवरात्राओं में देश–विदेश के श्रद्धालुओं की भारी भीड़ रहती है। देवी के चमत्कार की अनेक लोक कथाएं जनमानस में प्रचलित है।

त्रिपुरा सुन्दरी–माँ त्रिपुरा सुन्दरी का मंदिर बाँसवाड़ा से लगभग 19 किमी की दूरी पर स्थित है। इस शक्तिपीठ की लोक में बहुत मान्यता है। त्रिपुरा मतोपासना वैदिक काल के समकक्ष मानी जाती है और सम्पूर्ण भारत में इसका प्रसार था। आद्यजगद्गुरु शंकराचार्य के प्रयत्नों से भारतवर्ष में शक्ति उपासना की जो लहर उठी, उसी के परिणामस्वरूप देश में शक्ति पूजा का महत्त्व बढ़ा। इसी क्रम में बाँसवाड़ा का शक्तिपीठ भी त्रिपुरा सुन्दरी के नाम से प्रख्यात हुआ। राजस्थान के बांसवाड़ा–डूँगरपुर क्षेत्र में यह देवी तीर्थ ''तरतई माता'' के नाम से जाना जाता है। 'तरतई' शब्द 'त्रितयी' का अपभ्रंश है, जिसका अर्थ है– ''त्रित्व (तीन) से युक्त'।

माँ त्रिपुरा सुन्दरी

त्रिपुरा सुन्दरी के वर्तमान मन्दिर का जीर्णोद्धार सर्वप्रथम 12वीं शताब्दी में होने के कुछ उल्लेख मिलते हैं। मन्दिर को वर्तमान भव्य स्वरूप देने का कार्य 1977 ई. में प्रारम्भ किया गया। इससे पूर्व यह देवी तीर्थ उमराई गाँव के पास बीहड़ वन्य प्रदेश में झोपड़ीनुमा मन्दिर के रूप में अवस्थित था।

वर्तमान मन्दिर में गर्भ गृह में काले पत्थर की माँ त्रिपुरा की अष्टादश भुजाओं वाली भव्य प्रतिमा प्रतिष्ठित है। सिंहवाहिनी राजराजेश्वरी त्रिपुरा की 18 भुजाओं में दिव्य आयुध हैं। प्रतिमा के पृष्ठ–भाग के प्रभामण्डल में नौ छोटी–छोटी देवीमूर्तियाँ हैं। माँ के पृष्ठ भाग में योगिनियों की बहुत ही सुन्दर मूर्तियाँ अंकित हैं। मूर्ति के नीचे पेढ़ी पर श्रीचक्र अंकित है। माँ त्रिपुरा की उपासना श्रीचक्र पर की जाती है।

शाक्त ग्रन्थों में श्री महात्रिपुरसुन्दरी को जगत् का बीज और परम् शिव का दर्पण कहा गया है।

www.rajteachers.com

'कालिका पुराण' के अनुसार त्रिपुर शिव की भार्या होने से इन्हें त्रिपुरा कहा जाता है।

त्रिपुरा रहस्य आदि ग्रन्थों में त्रिपुरा सुन्दरी की कथा उल्लिखित है। एक बार भण्डासुर के उत्पात से जब जगत् त्रस्त हो गया, तब देवताओं के आग्रह पर भगवती आद्याशक्ति त्रिपुरासुन्दरी के रूप में प्रकट हुई। समस्त आसुरी शक्तियों के साथ युद्ध करने आए भण्ड दैत्य के साथ उनका भयंकर युद्ध हुआ और अन्त में भगवती त्रिपुरेश्वरी ने उसे भस्म कर दिया।

पंचाल समाज माँ त्रिपुरा की कुलदेवी के रूप में उपासना करता है। 14 चोखला पंचाल समाज ने यहां 2006 में स्वर्ण कीर्ति स्तम्भ बनवाया। वर्तमान में समाज की देख–रेख में भव्य मंदिर का निर्माण प्रगति पर है।

गतिविधि–

राजस्थान के अन्य महत्वपूर्ण लोक शक्तिपीठों से संबंधित कथानक, प्रसंगों और चित्रों का संकलन कीजिए।

लोक वाद्य यंत्र

लोकजीवन को सरस बनाने एवं उसे नई ऊर्जा पैदा करने में वाद्य यंत्रों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। राजस्थान में पाये जाने वाले कतिपय लोक वाद्य यंत्रों की यहां जानकारी प्रदान की जा रही है।

वाद्य यंत्रों का वर्गीकरण

अवनद्य (चमड़े से युक्त)	घन (धातु से बना)	तत् (तार लगे हुए)	सुषिर (फूंक से बजने वाले)
1.चंग	1. मंजीरा	1. सारंगी	1. अलगोजा
2.भपंग	2. खड़ताल	2. तंदूरा	2. शहनाई
3.मादल	3. ताशा	3. जन्तर	3. पूंगी
4.नगाड़ा		4. रावणहत्था	4. तुरही
5.इकतारा			

1. **इकतारा**–यह प्राचीन वाद्य है। गोल तूंबे में एक बांस फंसा दिया जाता है। तूंबे का ऊपरी हिस्सा काटकर उस पर चमड़ा मढ दिया जाता है। बांस में छेदकर उसमें खूंटी लगाकर उसमें एक तार कस दिया जाता है। इस तार को अंगुली से बजाया जाता है। यह वाद्य यंत्र एक हाथ से ही बजाया जाता है। मीराबाई इकतारा ही बजाती थी।
2. **भपंग**– यह वाद्य कटे हुए तूंबे से बना होता है, जिसके एक सिरे पर चमड़ा मढा होता है। चमड़े में एक छेद निकालकर उसमें जानवर की आंत का तार या प्लास्टिक की डोरी डालकर उसके सिरे पर लकड़ी का एक टुकड़ा बांध दिया जाता है। वादक इस वाद्य को कांख में दबाकर एक हाथ से उस डोरी या तांत को खींचकर या ढीला छोड़कर उस पर दूसरे हाथ से लकड़ी के टुकड़े से प्रहार करता है। अलवर क्षेत्र में, विशेषकर मेव लोगों में, यह वाद्य काफी प्रचलित है।

www.rajteachers.com

3. **सारंगी**– राजस्थान में सारंगी के विविध रूप दिखाई देते हैं। मिरासी, लंगा, जोगी, मांगणियार आदि कलाकार सारंगी के साथ ही गाते हैं। सारंगी सागवान, कैर तथा रोहिड़ा की लकड़ी से बनाई जाती है। सारंगी के तार बकरे की आंत के और गज में घोड़े की पूँछ के बाल बंधे होते हैं। सारंगी की तरह ही कमायचा, सुरिन्दा और चिकारा वाद्य हैं।
4. **तंदूरा**–इसमें चार तार होने के कारण कहीं–कहीं इसे चौतारा भी कहते हैं। यह पूरा लकड़ी का बना होता है। कामड़ जाति के लोग तंदूरा ही बजाते हैं। यह तानपुरे से मिलता–जुलता वाद्य है।
5. **जंतर**– यह वाद्य वीणा की तरह होता है। वादक इसको गले में डालकर खड़ा–खड़ा ही बजाता है। वीणा की तरह इसमें दो तूंबे होते हैं। इनके बीच बांस की लम्बी नली लगी होती है। इसमें कुल चार तार होते हैं। राजस्थान में यह गूजर भोपों का प्रचलित वाद्य है।
6. **रावण हत्था**– रावण हत्था भोपों का मुख्य वाद्य है। इसे बनाने के लिए नारियल की कटोरी पर खाल मढी जाती है, जो बांस के साथ लगी होती है। बांस में जगह–जगह खुंटियाँ लगा दी जाती है, जिनमें तार बंधे होते हैं। यह वायलिन की तरह गज से बजाया जाता है, जिसमें एक सिरे पर कुछ घुंघरू बंधे होते हैं। बजाते समय हाथ के ठुमके से घुंघरू भी बजते हैं।
7. **अलगोजा**– यह फूंक वाद्य है। यह बांसुरी की तरह होता है। वादक दो अलगोजे मुंह में रखकर एक साथ बजाता है। एक अलगोजे पर स्वर कायम किया जाता है तथा दूसरे पर स्वर बजाये जाते है।
8. **शहनाई**– यह एक मांगलिक वाद्य है। चिलम की आकृति का यह वाद्य शीशम या सागवान की लकड़ी से बनाया जाता है। वाद्य के ऊपरी सिरे पर ताड़ के पत्ते की तूंती बनाकर लगाई जाती है। फूंक देने पर इसमें से मधुर स्वर निकलता है।
9. **पूंगी**– यह वाद्य एक विशेष प्रकार के तूंबे से बनता है। तूंबे का ऊपरी हिस्सा लंबा और पतला तथा नीचे का हिस्सा गोल होता है। तूंबे के निचले गोल हिस्से में छेदकर दो नलियां लगाई जाती है। इन नलियों में स्वरों के छेद होते हैं। अलगोजे के समान ही एक नली में स्वर कायम किया जाता है और दूसरी से स्वर निकाले जाते हैं। कालबेलियों का यह प्रमुख वाद्य है।
10. **नगाड़ा**– यह दो प्रकार का होता है; एक छोटा और दूसरा बड़ा। छोटे नगाड़े के साथ नगाड़ी भी होती है। इसे लोकनाट्यों में शहनाई के साथ बजाया जाता है। लोक नृत्यों में नगाड़े की संगत के बिना रंगत ही नहीं आती है। बड़ा नगाड़ा धातु की लगभग चार–पांच फुट गहरी अर्द्ध अंडाकार कुंडी को भैंसे की खाल मंढकर चमड़े की डोरियों से कसा जाता है। इसे बम या टामक भी कहते हैं। यह युद्ध के समय रणभेरी के रूप में बजाया जाता था। इसे लकड़ी के डंडों से बजाया जाता है।
11. **ढोल**– राजस्थानी लोकवाद्यों में ढोल का प्रमुख स्थान है। यह लोहे या लकड़ी के गोल घेरे पर दोनों तरफ चमड़ा मंढकर बनाया जाता है। इस पर लगी रस्सियों को कड़ियों के सहारे खींचकर इसे कसा जाता है। वादक इसे गले में डालकर लकड़ी के डंडों से बजाता है।
12. **मांदल**– मिट्टी से बनी मांदल का आकार ढोलक जैसा होता है। इस पर हिरण या बकरे की खाल मंढ़ी होती है। यह वाद्य भीलों और गरासियों का प्रमुख वाद्य हैं।

www.rajteachers.com

13. **चंग**– होली के अवसर पर बजाया जाने वाला यह ताल वाद्य लकड़ी के गोल घेरे से बना होता है। इसके एक तरफ बकरे की खाल मंढ़ी जाती है। इसे दोनों हाथों से बजाया जाता है। इसे ढप भी कहते हैं।

14. **खंजरी**– यह ढप का लघु आकार है। ढप की तरह इस पर भी चमड़ा मंढा होता है। इसे कामड़, भील, कालबेलिया आदि बजाते है।

शहनाई

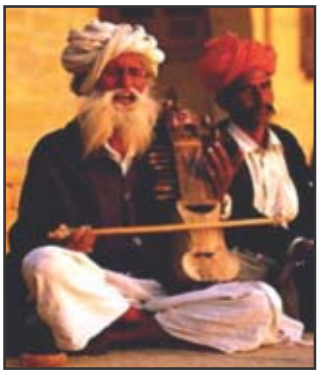

सारंगी

भपंग

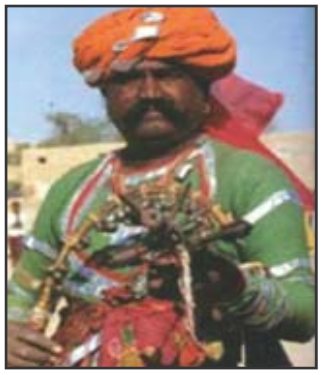

रावणहत्था

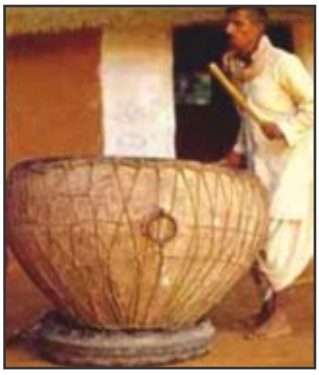

नगाड़ा

कमायचा

मोरचंग

तुरही

ढोल

www.rajteachers.com

जंतर

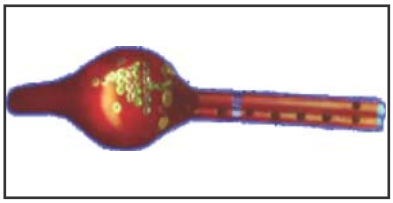
पूंगी

खंजरी

अलगोजा

तंदूरा

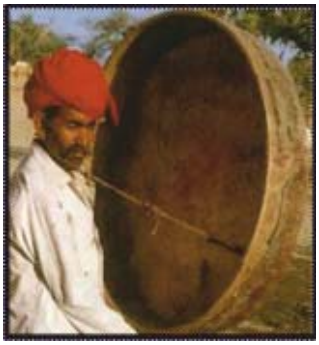
चंग

मांदल

इकतारा

बांकिया

खड़ताल

गतिविधि –

आपके अंचल में प्रचलित और कौन–कौन से लोक वाद्य है?इनके चित्रों सहित इन वाद्यों की जानकारी संकलित कीजिए।

इसके अलावा भी राजस्थान में अनेक लोक वाद्य प्रचलित हैं। इनमें मोरचंग, चिकारा, तुरही, खड़ताल, मंजीरा, झांझ, कांसी की थाली, बांकिया, भूंगल, मशक, ताशा, नौबत, धौंसा, ढोलक, डैरूं आदि उल्लेखनीय है। ये वाद्य राजस्थान के जनजीवन में इस प्रकार रच–बस गए हैं कि इनका प्रत्येक स्वर यहाँ की माटी और संस्कृति की गंध लिए हुए होता है।

प्रमुख लोकनृत्य

मस्ती, उल्लास और आनन्द के अतिरेक में की गई थिरकन ही नृत्य है। राजस्थान एक

www.rajteachers.com

भौगोलिक विविधता वाला प्रदेश है। इस विविधता ने नृत्यों को भी वैविध्य प्रदान किया है और अलग–अलग क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न नृत्य विकसित हुए हैं।

1. **गैर नृत्य–** गोल घेरे में इस नृत्य की संरचना होने के कारण यह 'घेर' और कालान्तर में 'गैर' कहा जाने लगा। होली के दिनों में मेवाड़ और बाड़मेर में इस नृत्य की धूम मची रहती है। इस नृत्य की सारी प्रक्रियाएं और पद संचालन तलवार युद्ध और पट्टेबाजी जैसी लगती है। यह केवल पुरूषों का नृत्य है। मेवाड़ और बाड़मेर में गैर नृत्य की मूल रचना एक ही प्रकार की है, किन्तु नृत्य की लय, चाल और मण्डल में अन्तर होता है।

गैर नृत्य

2. **गींदड़ नृत्य–** यह शेखावाटी का लोकप्रिय नृत्य है। सुजानगढ़, चुरू, रामगढ़, लक्ष्मणगढ़, सीकर और उसके आसपास के क्षेत्रों में यह लोकप्रिय है। नगाड़ा इस नृत्य का मुख्य वाद्य यंत्र होता है। इसमें नृतक अपने हाथ में छोटे डंडे लिए हुए होते हैं। नगाड़े की ताल के साथ इन डंडों को टकराकर नर्तक नाचने लगते हैं। जैसे–जैसे नृत्य गति पकड़ता है, नगाड़े की ध्वनि भी तीव्र होती चली जाती है। इस नृत्य में विभिन्न प्रकार के स्वांग भी निकाले जाते हैं, जिनमें साधु, शिकारी, सेठ–सेठानी, दुल्हा–दुल्हन आदि उल्लेखनीय हैं।

3. **चंग नृत्य–** यह पुरुषों का नृत्य है। इस नृत्य में हरेक पुरुष के पास चंग होता है और वह चंग बजाता हुआ गोल घेरे में नृत्य करता है। नृत्य करते हुए लय के साथ चंग बजाते हुए नर्तक अपने स्थान पर चक्कर लगाता है। इसमें चंग के साथ बाँसुरी का भी प्रयोग होता है। इस नृत्य में धमाल तथा होली के गीत गाए जाते हैं। इस नृत्य में अंग संचालन काफी मनोहारी होता है।

चंग नृत्य

4. **डांडिया नृत्य–** यह मारवाड़ का लोकप्रिय नृत्य है। गैर, गींदड और डांडिया तीनों ही नृत्य वृत्ताकार हैं। डांडिया नृत्य में पुरुषों की टोली हाथ में लंबी छड़ियाँ लेकर नाचती है। इसमें शहनाई और नगाड़ा बजाया जाता है। नर्तक आपस में डांडियां टकराते हुए घेरे में नृत्य करते हैं।

5. **ढोल नृत्य–** यह जालोर का प्रसिद्ध नृत्य है। यह भी पुरुषों द्वारा ही किया जाता है। इसमें एक साथ चार या पाँच ढोल बजाए जाते हैं। इसमें पहले मुखिया ढोल बजाता है फिर अन्य नर्तक, कोई मुँह में तलवार लेकर, कोई हाथों में डण्डे लेकर, कोई रूमाल लटकाकर नृत्य करते हैं। यह नृत्य प्रायः विवाह के अवसर पर किया जाता है।

ढोल नृत्य

6. **अग्नि नृत्य–** धधकते अंगारों पर किया जाने वाला यह नृत्य जसनाथी सम्प्रदाय के लोग करते हैं। यह नृत्य रात्रि में आयोजित

www.rajteachers.com

होता है। इस नृत्य में नर्तक कई बार अंगारों के ढेर को नाचते हुए पार करता है। इतना ही नहीं ये नर्तक उन अंगारों को कभी हाथ में उठाते हैं, मुँह में डालते हैं और कभी उनकी झोली भरकर नाना प्रकार के करतब करते हैं। नर्तक अग्नि से इस प्रकार खेलते है जैसे अंगारों से नहीं फूलों से खेल रहे हो।यह नृत्य भी पुरुषों द्वारा ही किया जाता है।

अग्नि नृत्य

7. **बमरसिया नृत्य–** यह अलवर और भरतपुर क्षेत्र का नृत्य है। इस नृत्य में एक बड़े नगाड़े का प्रयोग होता है। इसे दो आदमी बड़े डंडों की सहायता से बजाते हैं और नर्तक रंग–बिरंगे फूंदों तथा पंखों से बंधी लकड़ी को हाथों में लिए उसे हवा में उछालते हुए नाचते हैं। वाद्य यंत्रों में नगाड़े के अलावा थाली, चिमटा, ढोलक, खड़ताल और मंजीरा आदि का प्रयोग किया जाता है। नृत्य के साथ होली के गीत और रसिया गाया जाता है। बम (नगाड़े) के साथ रसिया गाने से इस नृत्य का नाम बमरसिया प्रसिद्ध हो गया।

8. **घूमर नृत्य–** यह समूचे राजस्थान का लोकप्रिय नृत्य है। यह नृत्य मांगलिक अवसरों तथा पर्वोत्सवों पर आयोजित होता है। यह महिलाओं का नृत्य है। इसमें लहंगा पहने स्त्रियाँ जब चक्कर लेकर गोल घेरे में नृत्य करती है तो उनके लहंगे का घेर और हाथों का लचकदार संचालन देखते ही बनता है।

घूमर

9. **तेरहताली नृत्य–** यह कामड़ जाति का अनोखा नृत्य है। यह नृत्य ही ऐसा है जो बैठकर किया जाता है। इसमें स्त्रियां अपने हाथ–पैरों में मंजीरे बांध लेती है और फिर दोनों हाथों से डोरी से बंधे मंजीरों को द्रुतगति की ताल और लय से शरीर पर बंधे मंजीरों पर प्रहार करती हुई विविध प्रकार की भाव–भंगिमाएँ प्रदर्शित करती है। यह चंचल और लचकदार नृत्य देखते ही बनता है। पुरूष तंदूरे की तान पर मुख्यतया रामदेवजी के भजन गाते हैं।

10. **भवाई नृत्य–** यह नृत्य अपनी चमत्कारिता के लिए अधिक प्रसिद्ध है। इस नृत्य में विभिन्न शारीरिक करतब दिखाने पर अधिक बल दिया जाता है। यह उदयपुर संभाग में अधिक प्रचलित है। अनूठी नृत्य अदायगी, शारीरिक क्रियाओं के अद्भुत चमत्कार तथा लयकारी की विविधता इस नृत्य की मुख्य विशेषताएँ हैं। तेज लय में सिर पर सात–आठ मटके रखकर नृत्य करना, जमीन पर पड़े रूमाल को मुँह से उठाना, गिलासों पर नाचना, थाली के किनारों पर नृत्य करना, तलवार की धार पर, कांच के टुकड़ों पर और नुकीली कीलों पर नृत्य करना इस नृत्य को रोमांचक बनाता है।

भवाई नृत्य

www.rajteachers.com

11. **गवरी नृत्य–** यह मेवाड़ में भीलों द्वारा किया जाने वाला प्रसिद्ध नृत्य है। मांदल और थाली की थाप पर गवरी नृत्य में कई स्वांगों का प्रदर्शन होता है। राई और बूडिया इसके प्रमुख पात्र है। राखी के दूसरे दिन यानी भाद्रपद की एकम् से लेकर 40 दिनों तक यह नृत्य किया जाता है। इस अवधि में गवरी नृत्य करने वाले ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते है, व्यसनों से दूर रहते हैं, हरी शाक नहीं खाते हैं तथा जमीन पर सोते हैं। गवरी नृत्य मां 'गोरज्या' (माँ पार्वती देवी या गौरी) की आराधना के लिए किया जाता है। 40 दिनों के बाद 'गलावण' और 'वलावण' की रस्म के साथ गवरी नृत्य को विराम दिया जाता है। यह नृत्य सिर्फ पुरुषों द्वारा किया जाता है और महिला पात्र भी पुरुष ही बनते है।

12. **कालबेलिया नृत्य–** राजस्थान में सपेरा जाति का यह एक प्रसिद्ध नृत्य है। इस नृत्य में शरीर की लोच और लय, ताल पर गति का मंत्रमुग्ध कर देने वाला तालमेल देखने को मिलता है। अधिकतर इसमें दो बालाएँ अथवा महिलाएँ बड़े घेरे वाला घाघरा और घुंघरू पहनकर नृत्य प्रस्तुति देती है। नृत्यांगना काले रंग की कशीदाकारी की गई पोशाक पहनती है, जिस पर कांच, मोती, कोड़ियाँ, कपड़े की रंगीन झालर आदि लगे होते हैं। नृत्य में पुरुषों द्वारा पूंगी और चंग बजाई जाती है। दूसरी महिलाएं गीत गाकर संगत देती है। मारवाड़ अंचल में यह नृत्य काफी लोकप्रिय है। हाल ही में इस नृत्य को यूनेस्को (UNESCO) द्वारा सूचीबद्ध किया गया है।

कालबेलिया नृत्य

इसके अलावा कच्छी घोड़ी नृत्य, कंजर बालाओं का चकरी नृत्य, चरी नृत्य और चिरमी नृत्य भी आकर्षक है।

गतिविधि–

आपके क्षेत्र में किए जाने वाले लोक नृत्य और नृत्य के दौरान गाए जाने वाले गीतों की सचित्र जानकारी संकलित कीजिए।

इसके साथ ही वर्षभर में लगने वाले मेले, संगीत विधा से जुड़ी पारंपरिक जातियाँ और घराने, लोक नाट्य, ख्याल गायकी, मांडणे, मेहन्दी, सांझी, गोदना, हस्तकला आदि राजस्थानी संस्कृति को और अधिक मोहकता प्रदान करते हैं। इन सबमें राजस्थानी माटी की महक रची–बसी है।

राजस्थान संगीत संस्थान जयपुर, राजस्थान संगीत नाटक अकादमी जोधपुर, जयपुर कत्थक केन्द्र जयपुर, भारतीय लोक कला मण्डल उदयपुर, रवीन्द्र मंच जयपुर, पश्चिम सांस्कृतिक केन्द्र (शिल्पग्राम) उदयपुर, जवाहर कला केन्द्र जयपुर, राजस्थान ललित कला अकादमी, जयपुर और कई संग्रहालय हमारी लोक संस्कृति के वाहक और संरक्षक है।

www.rajteachers.com

शब्दावली

ख्यात	–	इतिहास
परिसर	–	क्षेत्र
पर्यटक	–	भ्रमण करते लोग
मांगलिक	–	शुभ
भावज	–	भाई की पत्नी; भाभी

अभ्यास प्रश्न

1. भाग 'अ' को भाग 'ब' से सुमेलित कीजिए–

भाग अ	भाग ब
क. जीण माता	बाँसवाड़ा
ख. कैला देवी	जयपुर
ग. त्रिपुरा सुन्दरी	करौली
घ. जमवाय माता	बीकानेर
ङ करणी माता	सीकर

2. 'तरतई' शब्द का क्या अर्थ है?
3. कैला देवी के मेले में कौनसा विशेष नृत्य किया जाता है?
4. शहनाई वाद्य यंत्र किससे बनाया जाता है?
5. राजस्थान में प्रचलित लोक वाद्य यंत्रों का वर्गीकरण कीजिए।
6. राजस्थान में लोक संस्कृति के संरक्षक संस्थान कौन–कौन से हैं ?
7. राजस्थान के प्रमुख शक्तिपीठों का वर्णन कीजिए।
8. राजस्थान के प्रमुख वाद्य यंत्रों का वर्णन कीजिए।
9. राजस्थान के प्रमुख लोक नृत्यों का वर्णन कीजिए।

गतिविधि–

1. राजस्थान की लोक देवियों के संबंध में प्रचलित आख्यानों, जन मान्यताओं, जनश्रुतियों को सूचीबद्ध कीजिए।
2. राजस्थान के लोक नृत्यों को विद्यालय के सांस्कृतिक कार्यक्रमों में प्रस्तुत करें।
3. राजस्थान के लोक देवताओं के चित्रों का संकलन करें।
4. लोक वाद्यों को देखने के लिए विद्यार्थी अपने अध्यापक के साथ किसी संग्रहालय का भ्रमण करें।

www.rajteachers.com